संवाद सेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक - 26 अगस्त - 2020 नई दिल्ली

सांस्कृतिक-स्वतंत्रता का स्वदेशी-सूचनातंत्र

www.samvadsetu.com

संपादक
आशुतोष भटनागर

कार्यकारी – संपादक
डॉ॰ जयप्रकाश सिंह

उप–संपादक
सूर्य प्रकाश
रविन्द्र सिंह भड़वाल

डिजाइनिंग
राजीव पांडेय

ई–मेल
samvadsetu2011@gmail.com

फेसबुक पेज
@samvadsetu2011

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।
संवादसेतु मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। संवादसेतु अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक है।

लोक संवाद

आल्ह खंड
लोक-संवाद में वीरता, समरसता की अमर कहानी
पृष्ठ 3-8

आवरण कथा

सांस्कृतिक स्वतंत्रता का
स्वदेशी-सूचनातंत्र
पृष्ठ 9-11

न्यूजरूम में तनाव
पृष्ठ 12-14

ग्लोबल मीडिया

ब्रेकिंग न्यूज या ब्रेकिंग फैक्ट
पृष्ठ 15-16

आलेख

वेब सीरीज - अश्लीलता और फूहड़पन
परोसने की आजादी
पृष्ठ 17-18

भारतीय कला में स्वातंत्र्य चेतना
पृष्ठ 19-21

चीन के प्रति भारतीय मीडिया
के हमदर्द रवैये की वजह
पृष्ठ 22-23

आईसीटीसी क्षेत्र में आत्मनिर्भरता
और सुरक्षा का प्रश्न
पृष्ठ 24-26

कार्टून/ग्राफिक्स

पृष्ठ 27

संपादकीय

बहुप्रतीक्षित शिक्षा नीति का आगमन हो चुका है। पिछली नीति 34 वर्ष पूर्व आयी थी और आज तक भी अपने लक्ष्य पूरे नहीं कर सकी। इस बीच दुनियाँ के तौर-तरीके बदल गये और देश की जरूरतें भी। वर्तमान नीति को आकार लेने में भी छः वर्ष लगे। अनेक व्यावहारिक और राजनैतिक अड़चनें आती रहीं और समय खिंचता रहा। घोषणा के साथ ही संकेत मिलने लगे हैं कि हर मामले में विरोध पर आमादा विरोधी दल गुण-दोष के आधार पर इसका मूल्यांकन नहीं बल्कि सरकार पर हमला करने के हथियार के रूप में इसका उपयोग करेंगे।

नयी नीति को लागू करने और उससे अपेक्षित परिणाम पाने में वर्षों लगेंगे। किन्तु उस पर आलोचना के तीर साधे जाने लगे हैं। वर्ष 2035 तक उच्च शिक्षा में नामांकन दर 50 प्रतिशत तक पहुंचाने का लक्ष्य नयी नीति में रखा गया है। सीधा अर्थ है कि बड़ी जनसंख्या नयी नीति से अप्रभावित रहने वाली है। लेकिन इस अप्रभावित रहने वाली जनसंख्या को भी जल्द ही इसकी कमियों की जानकारी पहुंच जायेगी। सामाजिक सरोकारों के लबादे में यह जानकारी सोशल मीडिया के पंखों पर तिरती हुई पहुंचेगी।

जरूरी नहीं कि सामान्य नागरिकों तक जो जानकारी पहुंचे वह सच ही हो। यह भी हो सकता है कि वह अनुमान पर आधारित अर्धसत्य हो अथवा सफेद झूठ हो। जहाँ से यह सूचना प्रवाह प्रारंभ होगा वहाँ जानकारी पूरी होगी, उस जानकारी का रणनीतिक उपयोग किया जायेगा। लेकिन सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफ०र्म का उपयोग करते हुए वह क्या-क्या रूप लेगी, यह कहना कठिन है।

लोकतंत्र में सूचना का प्रसार महत्वपूर्ण है। लोगों के सूचना पाने के अधिकार को सीमित करने का विचार ही अलोकतांत्रिक है। लेकिन सूचना के नाम पर जो कुछ परोसा जा रहा है वह तथ्य और सत्य की कसौटी पर खरा हो यह सुनिश्चित करना जरूरी है। सूचना के नाम पर कुछ भी प्रसारित कर दिया जाय और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर उसकी पड़ताल भी न की जाय, यह अंततः लोकतंत्र को ही कमजोर करेगा।

सूचना पाने का अधिकार वस्तुतः सत्य जानने का अधिकार है। इसकी आड़ में राजनैतिक अथवा राष्ट्रविरोधी अभियानों का संचालन यदि हो रहा है तो यह जाँच का विषय होना ही चाहिये। जम्मू कश्मीर अथवा नक्सलवाद से जुड़े अनेक मामलों को हमने भ्रामक सूचनाओं के प्रसार के चलते नकारात्मक विमर्श बनते देखा है। ऐसे समय में तत्कालीन सरकारों के अनिर्णय की स्थिति में फंसे रहने और अकादमिक विश्व और विषय विशेषज्ञों के सब-कुछ जानते-बूझते भी चुप्पी साधे रहने के कारण यह झूठ स्थापित ही नहीं हुआ, जनता की धारणाओं में पैठ गया।

ऐसी घटनाओं पर सजग प्रतिक्रिया और त्वरित कार्रवाई की जरूरत है। लेकिन वह भी किसी की मनमानी पर निर्भर नहीं हो सकती। इसके लिये भी प्रभावी नीति के निर्माण की आवश्यकता है। नीति निर्माण के लिये विमर्श जरूरी है। इस विमर्श में सभी संबंधित पक्षों की सहभागिता अपेक्षित है। लेकिन यह आवश्यकता है कि अब देश में एक सूचना नीति भी बने जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित करे और यह अभिव्यक्ति तथ्यों से परे न हो। शिक्षा नीति आने वाले दशकों में प्रभावी होगी लेकिन सूचना नीति के अभाव में उसके प्रभावी होने से पहले ही काफी विषवमन हो चुकेगा। संभव है कि विषाक्त वातावरण में उपजे वृक्ष के फल अपेक्षित स्वाद और ऊर्जा न दे सकें।

आशुतोष भटनागर
संपादक

आल्ह खंड
लोक-संवाद में वीरता, समरसता की
अमर कहानी

चित्र : गूगल इमेज से साभार

सूर्य प्रकाश

कट–कट मुंड गिरैं ज्वानों के,
उठ–उठ रुंड करें तलवार।
यह गति हो गई रणखेतों में, बहने लगी खून की धार।

आल्ह खंड की ये पंक्तियां न सिर्फ काव्य के वीर रस को नई ऊंचाइयां देती मालूम पड़ती हैं बल्कि भारत के इतिहास को भी बेहद सरल और रोचक शब्दों में दोहराती हैं। एक दौर में हिंदी पट्टी के बड़े क्षेत्र में बेहद लोकप्रिय रहे आल्ह खंड को यदि हम भारत में सबसे प्रभावशाली लोकसंवाद का माध्यम कहें तो कुछ गलत न होगा। 12वीं सदी के महोबा के चंदेल शासक परमाल के सेनापति भाईयों आल्हा–ऊदल की कहानी सुनाने वाला आल्ह खंड करीब 1000 साल तक पीढ़ी दर पीढ़ी रिसते हुए यहां तक पहुंचा है। कोई विधिवत ग्रंथ न होने और अकादमिक इतिहासकारों की नजर से उपेक्षित होने के बाद भी यदि आज यह कहानी सुनकर श्रोताओं की भुजाएं फड़कती हैं तो यह आल्ह खंड की संवादपरकता की ही मिसाल है।

साहित्य के मर्मज्ञ मानते हैं कि आल्हखंड की रचना परमाल के दरबारी कवि जगनिक ने की थी। हालांकि वह रचना अप्राप्य है, लेकिन उसके आधार पर ही देश के हिंदी भाषी क्षेत्र में आल्ह खंड की कई शैलियां प्रचलित हैं। मूल रूप से यह अवधी–बुंदेली मिश्रित शैली में है और

सिर्फ काव्य रूप में ही है। मध्य प्रदेश की बघेली बोली, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश की भोजपुरी और उत्तर बिहार की मैथिली बोली में भी आल्हा का काफी प्रचार है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश के ही ब्रज और रुहेलखंड क्षेत्र में भी आल्हा लोक बोली में गूंजता है। क्षेत्र के विस्तार के साथ आल्हा के गायकों की बोली बदल जाती है, वाद्य यंत्रों में कुछ अंतर दिखता है, लेकिन संदेश एक ही है। आमतौर पर इसे ढोल, मंजीरे और खंजड़ी के साथ गाया जाता है।

आल्हा की लोकप्रियता और प्रभाव को यूं भी समझ सकते हैं कि भारत से होते हुए यह ब्रिटेन तक पहुंचा है, जहां इस पर काफी शोध हुए हैं और साहित्य भी लिखा गया है। आल्ह खंड के एक हिस्से ब्रह्मा का विवाह का अंग्रेजी में सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'The Lay of Brahma's Marriage: An Episode of the Alh&Khand' शीर्षक से अनुवाद किया है। आयरिश मूल के ग्रियर्सन 19वीं सदी में भारत में इंडियन सिविल सर्विसेज के तहत ब्रिटिश शासन के लिए काम कर रहे थे। हालांकि उनकी भारतीय भाषाओं और लोककलाओं में गहरी रुचि थी। यही वजह थी कि उन्होंने आल्ह खंड के इस हिस्से का अनुवाद किया था। सबसे पहले ब्रिटिश अधिकारी सर चार्ल्स इलियट ने आल्हा को लिपिबद्ध कराने का काम किया था।

आल्हखंड को लिपिबद्ध किए जाने का किस्सा भी बेहद रोचक है। 1865 में फर्रुखाबाद के कलेक्टर रहे अंग्रेज अधिकारी चार्ल्स इलियट की मुलाकात कुछ अल्हैतों (आल्हा गायन करने वाले) से हुई थी। आल्हा सुनकर इलियट मंत्रमुग्ध हो गए और फिर उनकी रुचि ऐसी बढ़ी कि उन्होंने एक गवैये को नौकरी पर ही रख लिया और उससे श्आल्ह खंडश के प्रचलित सभी किस्सों को लिपिबद्ध कराया। इलियट के प्रयास से 23 खंडों का आल्हा प्रकाशित हुआ। इसके बाद फिर कई प्रयास हुए और आज आल्ह खंड की कई रचनाएं उपलब्ध

चित्र : गूगल इमेज से साभार

बंगाल और बिहार में प्रशासक के तौर पर काम करने वाले सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने आल्ह खंड की लोकप्रियता को लेकर लिखा है कि पटना से दिल्ली के बीच में इससे लोकप्रिय कथा कोई दूसरी नहीं है।

हैं। उनके अलावा एक और ब्रिटिश अफसर विलियम वाटरफील्ड ने 1860 में Lay of Alha शीर्षक से आल्ह खंड के हिस्से का अंग्रेजी अनुवाद किया था। उनकी इस रचना को इंग्लैंड की ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने प्रकाशित किया था। बंगाल और बिहार में प्रशासक के तौर पर काम करने वाले सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने आल्ह खंड की लोकप्रियता को लेकर लिखा है कि पटना से दिल्ली के बीच में इससे लोकप्रिय कथा कोई दूसरी नहीं है।

आल्ह खंड के विस्तार में जाने से पहले हमें इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और किरदारों के बारे में भी जानना होगा। बुंदेलखंड में स्थित महोबा पर 12वीं सदी में चंदेल राजपूत वंश के राजा परमाल देव का शासन था। उनके सेनापति थे,

आल्हा और ऊदल। दोनों ही सगे भाई थे और बनाफर राजपूत थे। इन दोनों की वीरता पर ही राजा परमाल देव के दरबार में कवि जगनिक ने आल्ह खंड की रचना की थी। भले ही उनकी यह रचना उपलब्ध नहीं है, लेकिन जनश्रुतियों में ऐसी व्याप्त है कि उनके संकलन से ही कई रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। राजा परमाल देव और आल्हा ऊदल दिल्ली के राजपूत शासक पृथ्वीराज चौहान के समकालीन थे। आल्ह खंड में कुल 52 हिस्से हैं और हर हिस्से में युद्ध का वर्णन है, जिसमें आल्हा और ऊदल की वीरता का बखान किया गया है। इसके अलावा आल्हा ऊदल के मौसेरे भाई मलखान एवं सुलखान और राजा परमाल देव के बेटे ब्रह्मा अहम किरदार हैं।

आल्ह खंड में राजा परमाल की पत्नी मलहना के भाई माहिल का नकारात्मक किरदार चित्रित किया गया है। कहा जाता है कि राजा परमाल देव ने महोबा के राजा बासुदेव परिहार को परास्त कर महोबा पर जीत हासिल की थी और फिर उनकी बेटी मलहना से स्वयं विवाह किया था। इसके अलावा उनकी दो अन्य बेटियों देवला और तिलका का विवाह अपने दो बनाफर राजपूत सेवकों क्रमशरू दसराज और बच्छराज से करा दिया था। इन्हीं दसराज के बेटे आल्हा और ऊदल थे। ऊदल को उदय सिंह भी कहा जाता है। इसके अलावा तिलका और बच्छराज के पुत्र थे, मलखान और सुलखान। महोबा पर भले ही परमाल का शासन था, लेकिन बुंदेलखंड के ही उरई के शासक और बासुदेव परिहार के बेटे माहिल को यह कभी स्वीकार नहीं था। उसे हमेशा यह लगता था कि परमाल देव ने महोबा को उनके पिता को हराकर जीता है और उसके वास्तविक अधिकारी वह हैं। कहा जाता है कि इसी के चलते वह अकसर ऐसे कुत्सित प्रयत्न करते थे कि महोबे की सेना किसी युद्ध में रत रहे। हालांकि एक तथ्य यह भी है कि पृथ्वीराज चौहान से युद्ध में माहिल के बेटे अभय सिंह ने भी हिस्सा लिया था और वीर गति को प्राप्त हुआ था।

आल्ह खंड के बारे में बात करते हुए महोबा नगर के बारे में जानना भी जरूरी है, जिसके इर्द–गिर्द यह पूरा काव्य रचा गया है। महोबा को महोत्सव नगर के नाम से चंद्रवर्मन उर्फ नन्नुक ने स्थापित किया था, जो झांसी से 150 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। चंद्रवर्मन को ही

महोबा को महोत्सव नगर के नाम से चंद्रवर्मन उर्फ नन्नुक ने स्थापित किया था, जो झांसी से 150 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। चंद्रवर्मन को ही चंदेल राजवंश का संस्थापक माना जाता है।

चंदेल राजवंश का संस्थापक माना जाता है। चंदेलों से पहले यहां गहरवार और प्रतिहार राजपूतों का शासन था। पन्ना के चंद्र वर्मन ने प्रतिहार शासकों को परास्त कर महोबा पर सत्ता कायम की थी और इस शहर को स्थापित किया था। उनके बाद कई और प्रतापी चंदेल शासक हुए, जिनमें प्रमुख नाम विजयी–पाल (1035–1045 ई.) और कीर्तिवर्मन (1060–1100 ई.) का है। कीर्तिवर्मन ने कीरत सागर झील का निर्माण कराया था। कहा जाता है कि पृथ्वीराज चौहान और आल्हा–ऊदल के बीच पहली लड़ाई इस कीरत सागर के नजदीक ही हुई थी। आज भी इस कीरत सागर का महोबा में अस्तित्व मिलता है। कीर्तिवर्मन के बाद मदन वर्मन प्रमुख शासक थे, जिनका शासन 1128–1164 ई. के बीच रहा। इनके बाद राजा परमाल के हाथों में महोबा की सत्ता की बागडोर चली गई थी, जिनके सेनापति आल्हा–ऊदल थे। आज भी महोबा में चंदेल राजपूतों का बाहुल्य है, जिससे यह पुष्टि होती है कि एक दौर में चंदेल वंशी राजपूतों का प्रभुत्व रहा होगा।

जब आल्हा–ऊदल से परास्त हुई पृथ्वीराज की सेना

आल्हा ऊदल की वीरता को इससे आंका जा सकता है कि जिन पृथ्वीराज चौहान का भारत के इतिहास में अप्रतिम वीरता के लिए जिक्र किया गया है, उनकी सेना भी इन दोनों भाईयों से युद्ध में मात खाकर लौट गई थी। पृथ्वीराज चौहान और महोबा की सेना के बीच पहले युद्ध की कहानी भी काफी रोचक है। कहा जाता है कि पृथ्वीराज चौहान की सेना एक बार तुर्की सेना का पीछा करते हुए राह भटक गई थी। सेना में पृथ्वीराज चौहान के अलावा उनके सेनापति चामुंडाराय भी मौजूद थे। किवदंती है कि इस दौरान पृथ्वीराज चौहान ने परमाल की पत्नी मलहना की सुंदरता के बारे में सुना तो रीझ गया और महोबे पर हमला कर दिया। इस हमले के जवाब में महोबा के सेना ने वीरता से लड़ाई लड़ी और आल्हा ऊदल के नेतृत्व में चौहान की सेना को पीठ दिखाकर भागने पर मजबूर कर दिया।

परमाल के बेटे पर मोहित थी पृथ्वीराज की पुत्री बेला

एक किवदंती है कि बनाफर राजपूतों को क्षत्रिय समाज में कमतर माना जाता था और कोई भी उनसे अपनी बेटी का ब्याह नहीं करना चाहता था। ऐसे में हर विवाह में लड़ाई का जिक्र है और विजेता

कहा जाता है कि आल्हा ने नाथ संप्रदाय अपना लिया था। कई स्रोतों के मुताबिक आल्हा–ऊदल का पृथ्वीराज चौहान से दूसरा युद्ध 1182 में हुआ था, जबकि पृथ्वीराज की मृत्यु 1192 में मोहम्मद गोरी से जंग में हुई थी। किवदंती है कि ब्रह्मा की युद्ध में मौत के बाद उसकी पत्नी बेला भी उसकी चिता के साथ ही शहीद हो जाती है।

होने के पश्चात ही विवाह संपन्न होता है। आल्हा का विवाह हो या फिर उनके छोटे भाई ऊदल का विवाह, इन सभी का फैसला युद्ध के जरिए ही हुआ था। कहा यह भी जाता है कि आल्हा और ऊदल की वीरता के चलते एक बार पृथ्वीराज चौहान की सेना भी पीठ दिखाकर भाग गई थी। हालांकि दूसरी बार पृथ्वीराज चौहान से जंग में ही राजा परमाल की सेना पराजित हुई थी। यह जंग में विवाह के चलते ही हुई थी। किवदंती के अनुसार राजा परमाल के बेटे ब्रहमा पर पृथ्वीराज चौहान की बेटी बेला मोहित हो गई थी और दोनों ने गुपचुप विवाह कर लिया था। यह बात पृथ्वीराज को स्वीकार नहीं थी और उसने दोनों को कभी मिलने नहीं दिया।

पृथ्वीराज से युद्ध में ऊदल को मिली वीरगति

पृथ्वीराज ने महोबे पर हमला कर दिया और युद्ध छिड़ गया। युद्ध के दौरान ताहर ने ब्रह्मा को घायल कर दिया, दूसरी ओर क्रोध में ऊदल ने ताहर का वध कर दिया। ब्रह्मा की मृत्यु हो गई और बेला सती हो गई। इस युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की विजय हुई। कहा जाता है कि इस युद्ध में ऊदल की मृत्यु हो गई थी। यही नहीं अप्रतिम योद्धा कहे जाने वाले मलखान और सुलखान को भी इस युद्ध में वीरगति मिली थी। इसके बाद अपने भाई से अतिशय प्रेम करने वाले आल्हा के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया था। कहा जाता है कि आल्हा ने नाथ संप्रदाय अपना लिया था। कई स्रोतों के मुताबिक आल्हा–ऊदल का पृथ्वीराज चौहान से दूसरा युद्ध 1182 में हुआ था, जबकि पृथ्वीराज की मृत्यु 1192 में मोहम्मद गोरी से जंग में हुई थी। किवदंती है कि ब्रह्मा की युद्ध में मौत के बाद उसकी पत्नी बेला भी उसकी चिता के साथ ही शहीद हो जाती है। इस प्रसंग को बेहद दुख के साथ गाते हुए अल्हैत कहते हैं–

सावन सारी सोनवा पहिरे, चौड़ा भदई गंग नहाय, चढ़ी जवानी ब्रह्मा जूझे, बेलवा लेई के सती होइ जाय।

52 खंडों में है आल्हा

आल्हा की शुरूआत पृथ्वीराज चौहान व संयोगिता के स्वयंवर से होती है, अलग–अलग भाग में अलग–अलग कहानियां हैं, ज्यादातर भाग में युद्ध ही है। आखिरी भाग में महोबा की राजकुमारी बेला के सती होने की कहानी है। आल्हा में कुल 52 खंड हैं, जिनमें से प्रमुख हैं– परमाल का विवाह, महोबा की लड़ाई, गढ़ माड़ों की लड़ाई, नैनागढ़ की लड़ाई, विदा की लड़ाई, महला–हरण मलखान का विवाह, आल्हा की निकासी, लाखन का विवाह, बेतवा नदी की लड़ाई, लाखन और पृथ्वीराज की लड़ाई, बेला सती आदि।

वीर रस से पूर्ण है आल्ह खंड, अतिशयोक्ति अलंकार का सुंदर प्रयोग

आल्ह खंड की रचना की गहराई से विवेचना करें तो इस में अतिशयोक्ति अलंकार का काफी प्रयोग किया गया है। किसी भी एक दृश्य का चित्रण करने से पहले लंबी भूमिका सहारा लिया गया है । जैसे पृथ्वीराज और महोबा की सेना की लड़ाई का प्रसंग कवि ने इन शब्दों में किया है–

ना मुंह फेरैं, महोबे वाले, ना ई दिल्ली के चौहान।
कीरतसागर मदनताल पर, क्षत्रिन कीन खूब मैदान।
कटि कटि गिरैं बछेड़ा, चेहरा गिरैं सिपाहिन केर,
बिना सूंढ़ि के हाथी घूमैं, मारें एक एकको हेर।
चौड़ा ऊदल का रण सोहै, धांधूं बनरस का सरदार,
सवापहर लों चली सिरोही, नदिया बही रक्त की धार।

आल्हा के कीरत सागर की लड़ाई खंड के इस काव्य का अर्थ है– न महोबे के सैनिक पीछे हटने को तैयार हैं और न ही दिल्ली के चौहान पीछे हट रहे हैं। कीरत सागर और मदनताल पर क्षत्रियों के बीच घमासान युद्ध देखने को मिलता है। युद्ध में शामिल बैल, घोड़े और हाथियों के सिर कटकर गिरते हैं। सिपाहियों के सिर धड़ अलग होकर गिर रहे हैं। बिना सूंड़ के

चित्र : गूगल इमेज से साभार

हाथी रण क्षेत्र में घूम रहे हैं। ऊदल और पृथ्वीराज के सेनापति चामुंडाराय का युद्ध देखते ही बनता है। देर शाम तक लड़ाई चलती है और नदी में रक्त बह निकलता है। कवि ने जिन शब्दों में युद्ध का चित्रण किया है, उनसे वीर रस का संचार होता है।

इसी प्रकार पहले खंड संयोगिता स्वयंवर को भी कवि ने बेहद रोचक शब्दों में प्रस्तुत किया है। राजा जयचंद की छटा, उसके आसन और दरबार का सुंदर का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा–

राजा जयचंद कनउज वाला, आला सकल जगत सिरनाम।

को गति बरनै त्यहिमंदिर कै, सो है सोन सरिस त्यहिधाम।

केसरि पोतो सब मंदिर है, औ छति लागि वनातन केर।

सुवा पहाड़ी तामें बैठे, चक्कस गड़े बुलबुलन केर।

लाल औ मैनन कै गिनती ना, तीतर घूमिरहे सब ओर।

पले कबूतर कहुं घुटकत हैं, कहुं–कहुं नाचि रहे हैं मोर।

लागि कचहरी है जयचंद कै, बैठे बड़े–बड़े नरपाल।

बना सिंहासन है सोने का, तामें जड़े जवाहिर लाल।

तामें बैठो महाराज है, दहिने धरे ढाल तलवार।

कन्नौज का राजा जयचंद पूरे जगत में सिरमौर है। उसके राज्य के मंदिर की महिमा कही नहीं जा सकती, जो पूरी तरह स्वर्णजड़ित है। केसर से पुते मंदिर में तोते, बुलबुल, मैना और तीतरों की आकृतियां बनी हैं, जिनकी शोभा देखते ही बनती है। कहीं बेशुमार कबूतर बने हैं तो कहीं नाचते मोरों की आकृति है। सोने के बने और जवाहरों से जड़े सिंहासन पर ढाल तलवार लिए बैठे राजा जयचंद के दरबार में बड़े–बड़े राजा बैठे हैं।

आल्ह खंड को लेकर क्या कहते हैं आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आल्ह खंड की रचना करने वाले कवि जगनिक के बारे में कहा जाता है कि वह परमाल देव के दरबारी कवि थे। जनकवि जगनिक नाटक के रचयिता डॉ. कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह ने लिखा है कि जगनिक और आल्हा के छोटे भाई ऊदल बचपन में ही निराश्रित हो गए थे। इसके बाद उन्हें राजा परमाल की पत्नी मलहना ने ही अपने पुत्र के समान पाला था। भले ही जगनिक परमाल के दरबार में कवि थे, लेकिन मलहना उनके लिए मां के समान थीं। इस बात को इससे भी बल मिलता है कि तमाम शोध ग्रंथों और लेखकों ने जगनिक के परिवार की पुष्टि नहीं की है। यहां तक कि उनकी जाति को लेकर भी लेखक एकमत नहीं हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास पुस्तक में कवि जगनिक को लेकर अहम टिप्पणी की है। उन्होंने लिखा है, श्ऐसा प्रसिद्ध है कि कालिंजर के राजा परमाल के यहां जगनिक नामक भाट थे, जिन्होंने महोबा के दो देश प्रसिद्ध वीरों आल्हा और ऊदल के वीर चरित्र का वर्णन काव्य के रूप में लिखा था, जो इतना लोकप्रिय हुआ कि उसके गीतों का प्रचार पूरे उत्तरी भारत में हो गया। जगनिक के काव्य का आज कहीं अता–पता नहीं है, लेकिन उसके आधार पर प्रचलित गीत हिंदी भाषी प्रांतों के गांव–गांव में सुनाई पड़ते हैं। ये गीत आल्हा के नाम से प्रसिद्ध हैं और बरसात में गाए जाते हैं।श रामचंद्र शुक्ल ने जगनिक को वीर गाथा काल के महत्वपूर्ण कवियों में शामिल किया है।

सावन में आल्हा सुनने का है प्रचलन, इससे भी जुड़ी है एक कहानी

दरअसल चंदेल वंश के 15वें शासक परमाल के राज्य महोबा पर पहली बार पृथ्वीराज चौहान ने उस समय हमला किया था, जब रानी मलहना रक्षाबंधन के मौके पर कीरतसागर में पूजा के लिए जा रही थी। इसके जवाब में आल्हा–ऊदल के नेतृत्व में महोबे की सेना ने वीरता से युद्ध लड़ा और पृथ्वीराज की सेना को भागना पड़ा। कहा जाता है कि यह लड़ाई तीन दिन तक चली थी। आज भी इस दिन के उपलक्ष्य में रक्षाबंधन के तीसरे दिन महोबा में कजली महोत्सव का आयोजन होता है। इस दिन महोबा के लोग कीरत सागर के नजदीक स्थित गोखर हिल में जाकर गजांतक शिव की पूजा करते हैं।

सांस्कृतिक स्वतंत्रता का स्वदेशी–सूचनातंत्र

चित्र : गूगल इमेज से साभार

डॉ॰ जयप्रकाश सिंह

भारत केन्द्रित भारत–दृष्टि और भारत केन्द्रित विश्व–दृष्टि वर्तमान बौद्धिक–पारिस्थितिकी की सबसे बड़ी आवश्यकता बन गयी है। लेकिन ऐसी बौद्धिक पारिस्थितिकी निर्मित करने की जब भी कोशिश होती है, तो प्रायः सारी बहस भारत केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था तक ही सीमित कर दी जाती है, भारत–केन्द्रित सूचना व्यवस्था का पक्ष पूरी तरह उपेक्षित ही रह जाता है। वास्तविकता यह है कि जिस तरह के सूचना–सघन समाज में हम जी रहे हैं, उसमें शिक्षा क्षेत्र के पहल–प्रयोग, शोध–अन्वेषण भी बौद्धिक परिवेश और जनमानस का हिस्सा तभी बन सकते हैं, जब उसे सूचना तंत्र का सहयोग प्राप्त हो।

भारत–केन्द्रित सूचना–तंत्र के अभाव के कारण ही शिक्षा–क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण शोध हो चुके हैं, या हो रहे है, उनसे सामान्य भारतीय की तो दूर, अकादमिक व्यक्ति का भी परिचय नहीं है। वासुदेवशरण अग्रवाल की पुस्तक 'पाणिनीकालीन भारतवर्ष' हो, या हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'नाथ–सम्प्रदाय', दोनों शोध की दृष्टि से प्रतिमान रचने वाली किताबें हैं, लेकिन बौद्धिक विमर्श से दोनों गायब हैं। इसका कारण शिक्षा–तंत्र की उपेक्षा के साथ सूचना–तंत्र में इनको स्थान न मिलना भी है। कमजोर

सूचना–तंत्र के कारण ही ऐसे शोध–ग्रंथों के बावजूद हिन्दी पर स्तरीय–शोध के अभाव की तोहमत अलग से मढ़ दी जाती है।

पहले सूचनाओं का प्रमुख स्रोत शिक्षा–व्यवस्था थी। अब भी सूचनाओं को नई पीढ़ी तक पहुंचाने में उसकी एक निश्चित भूमिका बनी हुई है। इसके साथ एक हकीकत यह भी है कि पिछले तीस वर्ष में जो जीवनशैली पनपी है, उसमें शिक्षा–व्यवस्था के समानांतर ही स्थान सूचना–व्यवस्था ने भी स्थान बना लिया है। नई पीढ़ी जितना समय

चित्र : गूगल इमेज से साभार

शिक्षण–संस्थानों में खर्च करती है, लगभग उतना ही समय सोशल–मीडिया, फिल्म, डाक्यूमेंट्री या सूचना के अन्य प्लेटफार्म पर भी खर्च कर रही है। इसलिए उसमें शिक्षा–व्यवस्था से प्राप्त सूचना को सूचना–तंत्र से प्राप्त सूचनाओं की कसौटी पर कसने और सूचना–तंत्र से प्राप्त सूचनाओं को किताबों से प्राप्त सूचनाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रवृत्ति पनपी है। यदि आज यह कहा जाने लगा है कि व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी की सूचनाएं अन्य यूनिवर्सिटी की सूचनाओं पर भारी पड़ रही हैं, तो इसे पूरी तरह से मजाक में नहीं टाला जा सकता। इस कथन को शिक्षा–तंत्र और सूचना–तंत्र के उभरते सम्बंधों के परिप्रेक्ष्य में देखने–समझने की कोशिश होनी चाहिए।

भारत–केन्द्रित बौद्धिक पारिस्थतिकी रचने और उसके माध्यम से सांस्कृतिक–स्वतंत्रता प्राप्त करने के जिस लक्ष्य की चर्चा होती है, उसकी पूर्वशर्त भारत केन्द्रित सूचना–तंत्र का निर्माण है। भारतीय दृष्टि से संचालित संचार–व्यवस्था, सूचना–प्रवाह का निर्माण शैक्षणिक–परिवेश के विऔपनिवेशीकरण(डिकोलोनाइजेशन)के लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि नए

भारत अभी तक अपनी जीवंत सांस्कृतिक विरासत का उपयोग शेष दुनिया से सम्बंध बनाने और उनके बीच स्थापित करने के लिए एक सीमा से अधिक नहीं कर सका है।

देश–काल, विश्व–व्यवस्था में भारत और भारतीयता को प्रत्येक मोर्चे पर स्थापित करने के लिए भी आवश्यक है। भारत के विश्व–महाशक्ति बनने का रास्ता उसके सूचना–महाशक्ति बनने से होकर ही गुजरता है और ऐसा होने के बड़े स्पष्ट कारण हैं।

भारत अभी तक अपनी जीवंत सांस्कृतिक विरासत का उपयोग शेष दुनिया से सम्बंध बनाने और उनके बीच स्थापित करने के लिए एक सीमा से अधिक नहीं कर सका है। विशेषज्ञ समय–समय पर यह राय देते रहे हैं कि सांस्कृतिक–कूटनीति का उपयोग कर भारत स्वयं को आसानी से विश्व–पटल पर स्थापित कर सकता है। दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों में तो भारत का सांस्कृतिक प्रभाव अब तक बना हुआ है, लेकिन वहां भारत अपनी सशक्त–उपस्थिति दर्ज कराने में असफल रहा है, तो उसका कारण यही है कि उसके पास सूचना का वैश्विक ढांचा नहीं है।

वैश्विक सूचनातंत्र के अभाव के कारण ही भारत दक्षिण–पूर्व एशिया में भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के पाठ–भेद से उत्पन्न दूरी अथवा पूरी दुनिया में जातिवाद को नस्लवाद के समान बताकर होने वाले बौद्धिक आक्रमणों के समुचित प्रतिकार के स्थान पर रक्षात्मक हो जाता है, स्पष्टीकरण देने लगता है। हद तो तब हो जाती है जब पाकिस्तान जैसे इस्लामिक गणतंत्र और चीन जैसे लौह–पर्दे की नीति से संचालित देश भी भारत को खुलेपन, सहिष्णुता पर उपदेश देकर चले जाते हैं, और सूचना के क्षेत्र में कमजोर स्थिति के कारण हम सफाई देने की मुद्रा अपना लेते हैं। 5 अगस्त 2019 के बाद पाकिस्तानी प्रधानमंत्री ने कई बार यह बयान दिया कि भारत गांधी–नेहरू के आदर्शों से दूर जा रहा है, नया भारत असहिष्णु है। इस नैरेशन को आगे बढ़ाने वाले आलेख दुनिया भर के अखबारों में प्रकाशित हुए। भारत पाकिस्तान प्रेरित इस विमर्श का ठीक ढंग से उत्तर नहीं दे सका। साधारण सा तर्क दिया जा सकता

था कि गांधी और नेहरू को 70 साल पहले पूरी तरह से दरकिनार कर ही तो पाकिस्तान की नींव रखी गई थी। अब जब भारत अपने राष्ट्रीय हितों के अनुरूप निर्णय रहा है, तो पाकिस्तान किस मुंह से गांधी–नेहरू की दुहाई दे रहा है।

भारत को पांथिक–सहिष्णुता पर पग–पग उपदेश देने वाले देश के पूर्व–विदेशमंत्री के ऊपर केवल इस कारण ईशनिंदा का मामला दर्ज हो जाता है कि उसने सभी पंथों को समान बता दिया था। लेकिन इसे राष्ट्रीय–अंतराष्ट्रीय स्तर पर पाकिस्तान के वास्तविक चरित्र की झलक के रूप में पेश करने में भारत विफल रहा। इसका एकमात्र कारण सूचना–प्रवाह में हमारी कमजोर वैश्विक स्थिति ही रही है। एक कठुआ–प्रकरण के कारण हिन्दुस्तान को रेपिस्तान बताने के अभियान को यदि वैश्विक स्तर पर स्वीकृति मिल जाती है, तो इसका भी बड़ा कारण सूचना के मोर्चे पर भारत की कमजोर–प्रतिक्रिया ही थी।

स्पष्ट है कि भारत की छवि को लगातार नुकसान पहुंचाने वाले, उसे पिछड़ा और अमानवीय साबित करने वाले मीडिया अभियानों का उत्तर मजबूत सूचना–व्यवस्था के जरिए ही दिया जा सकता है। भारत की वैश्विक स्वीकृति उसकी सशक्त सूचना अधोसंरचना पर ही निर्भर करेगी। अभी तो स्थिति यह है कि देश में अपवाद स्वरूप घट रही कुछ अप्रिय घटनाओं को भारत के चरित्र के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिशें सूचना–क्षेत्र में लगातार हो रही हैं और भारतीय सूचना–तंत्र का राडार प्रायः इन खबरों का नोटिस भी नहीं ले पाता, सही प्लेटफार्म पर सटीक उत्तर देना तो बहुत दूर की बात है।

इसी प्रक्रिया का दूसरा पक्ष है अपनी परम्परा, विरासत, दृष्टिकोण और दर्शन के सकारात्मक पक्ष से पूरी दुनिया को परिचित कराना। योग की वैश्विक स्वीकृति के बाद भारत की वैश्विक–स्तर पर एकतरह से रीब्रांडिंग हुई है। लेकिन योग की दस्तक और प्रामाणिकता और आवश्यकता इतनी अधिक थी कि उसकी स्थापना होनी ही थी, फिर भी देश और विदेश में लम्बे समय तक सूचना के अवरोध खड़े किए ही गए। योग के अतिरिक्त कई ऐसी विधाएं अब भी हैं, जो दुनिया में भारत की पहचान बना सकती हैं। कलरीपयट्टू जैसी भारतीय मार्शल आर्ट, शास्त्रीय संगीत, भारतीय वेश–भूषा, पर्यावरण–मित्र जीवनशैली आदि ऐसे क्षेत्र है, जिन्हें यदि ठीक ढंग से विश्व–बिरादरी के समक्ष लाया जाये

भारत को पांथिक-सहिष्णुता पर पग-पग उपदेश देने वाले देश के पूर्व-विदेशमंत्री के ऊपर केवल इस कारण ईशनिंदा का मामला दर्ज हो जाता है कि उसने सभी पंथों को समान बता दिया था।

त ।` उनको स्वीकार किए जाने में समय नहीं लगेगा। इनसे भारत की दूसरे देशों को प्रभावित करने की साफ्ट–पॉवर बहुत बढ़ जाएगी। कारण साफ है, इन विधाओं का अपना विशिष्ट भारतीय दर्शन भी है, जो इनके साथ पूरी दुनिया की यात्रा करेगा और स्वीकृत भी होगा। इनकी स्वीकृति के लिए आवश्यकता केवल मजबूत और विश्वसनीय सूचना–संरचना की है।

स्वदेशी सूचना–तंत्र की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि सूचना–प्रवाह और उससे सम्बंधित डेटा देश की सुरक्षा और सम्प्रभुता में निर्णायक स्थान प्राप्त कर चुके हैं। युद्धभूमि अब जल, थल, नभ के साथ वर्चुअल दुनिया तक विस्तृत हो चुकी है। शत्रु अब वर्दी–रहित है, और नागरिक–क्षेत्रों में बैठकर सूचना, वीडियो के जरिए हमलों को अंजाम दे सकता है। वर्तमान युद्ध में केवल सशस्त्र सैनिक नहीं, बल्कि निशस्त्र आम नागरिक भी योद्धा की भूमिका में आ चुके हैं।

सोशल–मीडिया के विभिन्न प्लेटफार्म पर बने अकाउंट और उन पर हो रही गतिविधियां महत्वपूर्ण सूचनाएं शत्रुओं तक पहुंचा सकती हैं। मसलन, हाल में चीन अपने सैनिकों को उचित सम्मान देने के प्रश्न पर केवल इसलिए दबाव में आ गया क्योंकि उसके ही सोशल–मीडिया प्लेटफार्म पर एक ऐसा वीडियो आ गया, जिसमें एक चीनी सैनिक के शव को उचित सम्मान न देने पर उसके परिजन असंतोष व्यक्त कर रहे थे।

इसी तरह, 2015 में आईएसआईएस के एक ठिकाने को तबाह करने में अमेरिकी सेना को इसलिए सफलता मिली थी क्योंकि उसके हाथ एक आतंकी कमांडर की सेल्फी लग गई थी।

आईएसआईएस के एक कमांडर ने अपने किसी ठिकाने से फेसबुक पर एक सेल्फी पोस्ट की, अमेरिकी खुफिया एजेंसियों ने सेल्फी के लोकशन की छानबीन की और 22 घंटे बाद वहां बमबारी कर ठिकाने को तहस–नहस कर दिया गया। सोशल–मीडिया पर जनरेट हो रहे डेटा की सुरक्षा सबसे बड़ी आवश्यकता बन गई है और यह कार्य स्वदेशी सूचना–तंत्र का विकास करके ही संभव है।

ऐसे और भी कारण है, जो वैश्विक परिप्रेक्ष्य से लैस स्वदेशी सूचना–तंत्र को वर्तमान भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता बना देते हैं। एक राष्ट्र और सभ्यता के रूप में सूचना के वैश्विक और विश्वसनीय ब्रांड खड़े करना सामूहिक–जिम्मेदारी है। यह सांस्कृतिक–स्वतंत्रता की मूलभूत शर्त है।

यदि अगले कुछ वर्षों में यह कार्य नहीं होता तो सबसे निर्णायक मोर्चे पर पिछड़ने के लिए हम अभिशप्त होंगे।

न्यूजरूम में तनाव

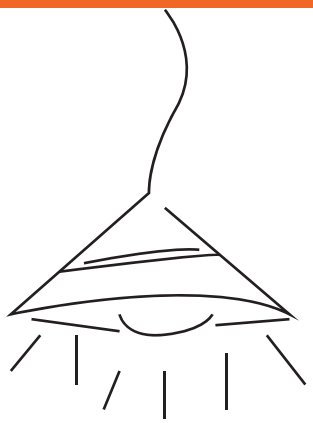

बातचीत में हर पत्रकार बढ़ते तनाव और उससे उत्पन्न बीमारियों की बात करता है, परन्तु किसी भी मीडिया संस्थान में पत्रकारों के तनाव को कम करने के लिए कुछ नहीं हुआ।

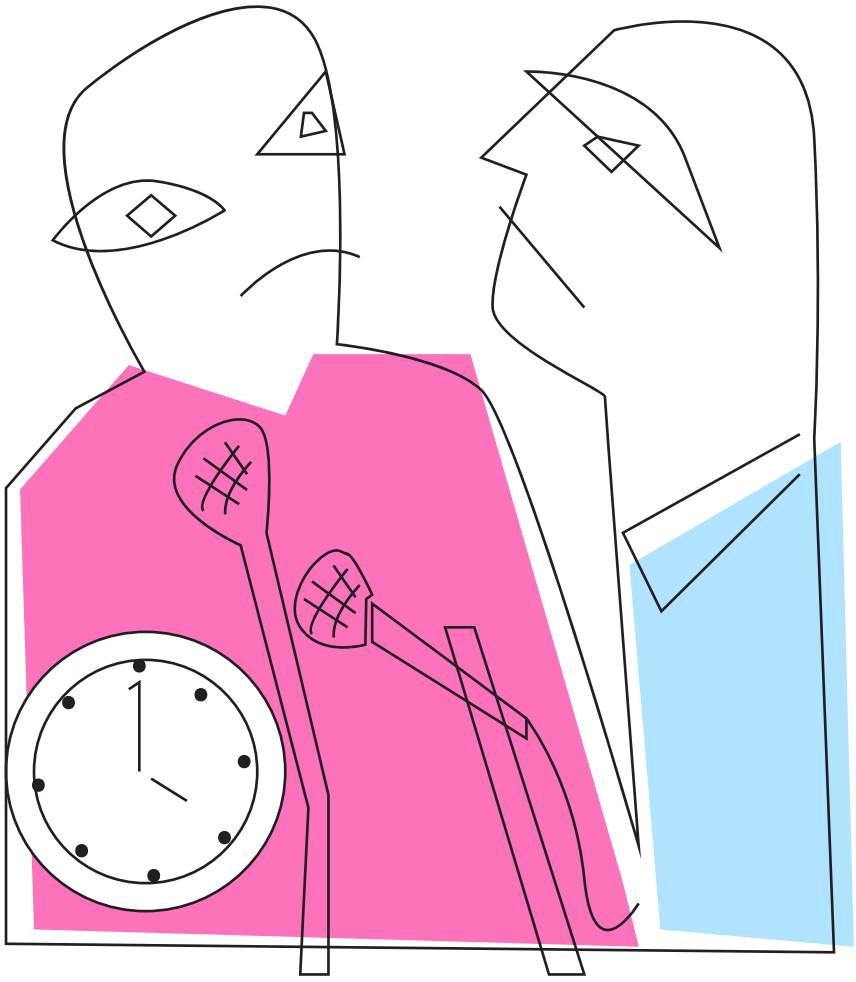

इलस्ट्रेशन : राजीव पांडेय

डॉ॰ प्रमोद कुमार

एक अदृश्य हत्यारा दबे पांव भारतीय मीडिया न्यूजरूप में प्रवेश कर चुका है जो चुन–चुनकर पत्रकारों को निशाना बना रहा है। स्थिति गंभीर है। यदि मीडिया मालिकों, सरकारों, पत्रकार संगठनों तथा स्वयं पत्रकारों द्वारा इसे रोकने के अविलंब ठोस प्रयास नहीं हुए तो आने वाले दिनों में यह मीडिया को प्रतिभा से वंचित कर देगा

देश के सर्वाधिक प्रसारित दैनिक समाचार पत्र 'दैनिक भास्कर' के युवा पत्रकार तरुण सिसोदिया (37)द्वारा दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में 6 जुलाई को की गयी आत्महत्या ने देश के सम्पूर्ण पत्रकार जगत को झकझोर दिया है। इसके कुछ ही दिन बाद दिल्ली के निकट गाजियाबाद में 'पंजाब केसरी' के एक प्रतिनिधि पवन कुमार द्वारा भी आत्महत्या करने का मामला सामने आया। इन दोनों ही पत्रकारों को मैं व्यक्तिगत रूप से गत करीब एक दशक से जानता था। दोनों ही होनहार, युवा और जुझारू पत्रकार थे

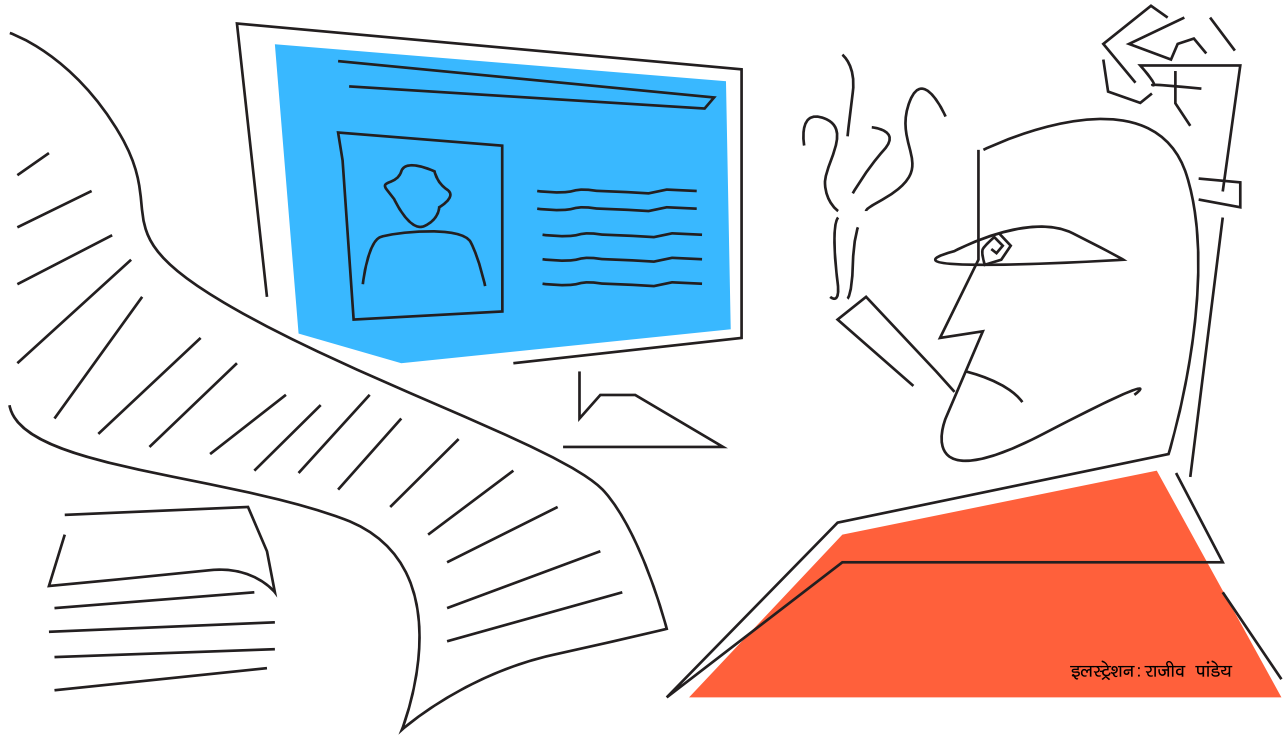

इलस्ट्रेशन : राजीव पांडेय

और दोनों की आत्महत्या का कारण भी एक ही है–नौकरी छूटने के कारण उत्पन्न तनाव। 'दैनिक भास्कर' ने फरवरी में तरुण को नौकरी से निकालने का नोटिस दिया था। पवन की भी नौकरी चली गयी थी। उस तनाव के चलते दोनों इतने अधिक मानसिक अवसाद में चले गये कि आत्महत्या जैसा गलत कदम उठा लिया।

सम्पूर्ण समाज की समस्याओं को उजागर करने वाले पत्रकारों द्वारा आत्महत्या की खबरें भले ही मुख्यधारा के मीडिया में खबर न बनी हों, परन्तु इन दोनों ही घटनाओं ने समाचार पत्रों के न्यूजरूम में पनप रहे एक गंभीर खतरे की भयावहता को उजागर कर दिया है। वैसे मीडिया मालिकों की ओर से इसे गंभीरता से लेने की खबर अभी कहीं से नहीं मिली है, परन्तु कुछ पत्रकार संगठनों ने इस मुद्दे पर देशभर के पत्रकारों में जागरूकता अभियान चला दिया है। दिल्ली पत्रकार संघ के अध्यक्ष एवं 'पीटीआई' के वरिष्ठ पत्रकार मनोहर सिंह ने इस मुद्दे पर कई वेबिनार किये और अपने सदस्यों को तनावमुक्ति के गुरू सीखने के लिए वे सतत प्रेरित कर रहे हैं।

भारतीय मीडिया न्यूजरूम में गत पांच वर्षों में तनाव एक गंभीर समस्या के रूप में उभरा है। वर्ष 2014 में जब मैंने अपना पीएच.डी शोधकार्य प्रारंभ किया तो न्यूजरूम में कार्यरत पत्रकारों से बात करने के बाद यह एक गंभीर समस्या के रूप में उभरकर सामने आया। इस संबंध में जब मैंने और गहन अध्ययन किया तो पता चला कि पश्चिमी देशों के न्यूजरूम में यह समस्या एक दशक पहले महसूस की गयी थी और 'बिजनेस इनसाइडर' सहित विश्व के कई बड़े मीडिया संस्थानों द्वारा अपने पत्रकारों को 'रिलेक्स' रखने के लिए अनेक उपाय करने प्रारंभ किये गये थे। तभी से मैं भारतीय मीडियाकर्मियों को इस गंभीर खतरे के प्रति आगाह करता आ रहा हूं। बातचीत में हर पत्रकार बढ़ते तनाव और उससे उत्पन्न बीमारियों की बात करता है, परन्तु किसी भी मीडिया संस्थान में पत्रकारों के तनाव को कम करने के लिए कुछ नहीं हुआ।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय (कोटा, राजस्थान)में पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के संयोजक प्रो. सुबोध कुमार के सान्निध्य में मैंने जून 2014 में भारतीय मीडिया न्यूजरूम पर अध्ययन प्रारंभ किया। अध्ययन के दौरान न्यूजरूम में कार्यरत 82 प्रतिशत से अधिक पत्रकारों ने तनाव को एक प्रमुख समस्या बताया। उस अध्ययन में बढ़ते तनाव के जो प्रमुख कारण पत्रकारों ने गिनाये उनमें शामिल थे–काम के अनिश्चित घंटे, सुबह समय पर ऑफिस आना तो तय लेकिन जाना कब, यह किसी को नहीं पता, कार्यदशाओं में निरंतर गिरावट, बढ़ती ठेका प्रथा के कारण नौकरी और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी समाप्त होना, सेवानिवृत्ति के बाद किसी भी लाभ का न मिलना, प्रतिदिन 'स्कूप' न मिलने के कारण तनाव, पुरानी खबर को मसालेदार बनाकर प्रस्तुत करने के लिए नये 'आइडेशन', प्रतिस्पर्धी संचार माध्यमों से आगे रहने की होड, डेडलाइन का दबाव, सोशल मीडिया के कारण उत्पन्न चुनौतियां, मीडिया मालिक के बिजनेस हित, संपादक की व्यक्तिगत पसंद और नापंसद, न्यूजरूम में लोगों की छंटनी, रिपोर्टर और उपसंपादक पर बढ़ता काम का दबाव, माफिया व असामाजिक तत्वों की धमकियां, आतंकी हमलों, साम्प्रदायिक दंगों और किसी महामारी, प्राकृतिक आपदा, युद्ध आदि के कारण जान का संकट, आदि। संवाददाता ही

नहीं, डेस्क पर काम करने वाले पत्रकारों की भी दर्जनों समस्याएं हैं जिनके कारण वे हर समय तनाव में रहते हैं।

अध्ययन के दौरान यह भी पता चला कि पत्रकार स्वयं भी इस तनाव को कम करने के लिए कुछ तरीके अपनाते हैं। कुछ पान खाते हैं, कुछ सिगरेट और मदिरा का सेवन करते हैं तो कुछ अपने बॉस को गालियां देकर मन हल्का कर लेते हैं। कुछ आपस में अपनी समस्याओं पर चर्चा करते हैं। अध्ययन में पता चला कि पत्रकारों की कार्यदशाएं इतनी अधिक बिगड़ रही हैं कि उनके पास स्वयं का इलाज कराने का भी समय नहीं है। अपने परिवार और रिश्तेदारों की बीमारी का इलाज कराना तो दूर की बात है। कुछ लोगों ने यहां तक कहा कि यदि रिश्तेदारी, पास–पड़ोस आदि में कहीं कोई मृत्यु हो जाती है तो संवदेना भी व्हाट्सएप पर ही व्यक्त करनी पड़ती है, क्योंकि व्यक्तिगत मिलने का समय नहीं है। पत्रकारों ने यह भी बताया कि नयी डिजिटल तकनीक भी किसी न किसी प्रकार से तनाव की बढ़ोतरी का कारण बनती जा रही है। ऑनलाइन पोर्टलों में एक नये तरीके की समस्या सामने आ रही है। पत्रकार पहले तो मसालेदार खबर लाए और फिर पोर्टल पर अपलोड होने के बाद उस पर अधिक से अधिक लाइक और शेयर भी सुनिश्चित करे। कुछ लोगों का तो मानधन भी इस पैटर्न पर ही निर्धारित होने लगा है।

जून 2014 से लेकर अप्रैल 2017 तक मैंने यह अध्ययन दो चरणों में किया। अंतिम चरण में 169 पत्रकारों के सैंपल पर अध्ययन किया गया। अप्रैल 2017 में पता चला कि न्यूजरूम में काम करने वाले 30 वर्ष से अधिक आयु के 48 प्रतिशत पत्रकार किसी न किसी ऐसी समस्या से ग्रस्त थे जो उनके स्वास्थ्य को प्रभावित कर रही थी। 26 प्रतिशत हड्डी की समस्या, उच्च रक्तचाप और मधुमेह से ग्रस्त थे, 27 प्रतिशत को आंख संबंधी शिकायत थी, 76 प्रतिशत कभी भी समय पर भोजन नहीं कर पाते थे। 78 प्रतिशत 12 घंटे से अधिक समय तक काम करते थे। 67 प्रतिशत ने कहा कि उनके पास स्वयं का भी इलाज कराने का समय नहीं था। 82 प्रतिशत नौकरी की गारंटी न होने के कारण चिंतित थे। इस सम्पूर्ण शोध पर आधारित मेरी पुस्तक 'द फ्यूचर न्यूजरूम' इसी साल जनवरी में प्रकाशित हुई है।

भारतीय मीडिया संस्थानों में भले ही तनाव को बडी चुनौती के रूप में न लिया गया हो, परन्तु अमेरिका जैसे देशों में इसे अनेक बीमारियों का प्रमुख कारण मानकर इसके निदान के लिए प्रयास 2012 के आसपास ही प्रारंभ हो गये थे। उसके बाद वहां अनेक मीडिया संस्थानों में इसकी गहरायी मापने के लिए शोध भी हुए। वर्ष 2012 में लेविसन जांच आयोग ने 'द न्यूज ऑफ द वर्ल्ड' के न्यूजरूम में काम करने वाले पत्रकारों में बढते तनाव का जिक्र किया था। इसे गंभीरता से लेते हुए 'द हफिंगटन पोस्ट ने मई 2015 में पांच लेखों की एक श्रृंखला में इस मुद्दे को उठाया। उस स्टोरी में विस्तार से बताया गया कि पत्रकारों को भी यह नहीं मालूम कि जिन बीमारियों के वे शिकार होते जा रहे हैं उसका असली कारण तनाव है। उससे सबक लेते हुए न्यूयार्क की बिजनेस और तकनीकी न्यूज वेबसाइट 'द बिजनेस इनसाइडर' ने अपने कर्मचारियों को खुश रखने के लिए विशेष प्रयास करने प्रारंभ किये। उसके परिणामस्वरूप एक साल में ही कंपनी छोड़कर जाने वाले कर्मचारियों की संख्या में कमी आ गयी। अमेरिका के 'द टाकिंग प्वाइंटस मेमो' ने अपने ऑफिस में 'नेप रूम' बना दिये, जहां कोई भी कर्मचारी जब चाहे कुछ समय तक सो सकता है। इस आइडिया का शुरू में कंपनी प्रबंधन में कुछ लोगों ने विरोध किया, परन्तु छह महीने बाद ही पता चला कि 'नेप रूम' का इस्तेमाल करने वाले कर्मचारियों की 'क्रिएटीविटी' पहले की अपेक्षा बढ गयी। 'फोर्ब्स' ने भी अपने कर्मचारियों को 2015 में 100 डालर अतिरिक्त देने प्रारंभ कर दिये ताकि वे अपनी मनपसंद चीजें खा सकें। उसने भी ऑफिस में 'नेप रूम' बनाये, जिसका प्रयोग संपादक से लेकर सामान्य पत्रकार तक करते हैं। चूंकि लाभदायक सिद्ध हुआ इसलिए यह अभी भी जारी है।

भारत के मीडिया संस्थानों में पत्रकारों को तनावमुक्त रखने के लिए इस प्रकार के प्रयोगों पर चर्चा करने के लिए भी लोग तैयार नहीं हैं। यहां तो यह चर्चा प्रमुखता से होती है कि जो सुविधाएं पत्रकारों को दी जा रही हैं उनमें कटौती कैसे हो सकती है। कटौती को प्रबंधन अपनी बड़ी उपलब्धि के रूप में गिनाता है। हकीकत यह है कि भारतीय मीडिया न्यूजरूम में तनाव एक गंभीर समस्या बन चुका है और इस पर प्रभावी रोक लगाने के लिए सभी मीडिया संस्थानों में गंभीर और ईमानदार प्रयास किये जाने की जरूरत है। वास्तव में तो तनाव पत्रकारिता जगत की अनिवार्य बुराई है इसलिये नवोदित पत्रकारों को भी तनाव को झेलने और उस पर जीत हासिल करने का प्रशिक्षण मीडिया प्रशिक्षण संस्थानों से ही दिया जाना चाहिए। अपने अध्ययन में मैंने पाया कि 'पीटीआई' जैसी न्यूज एजेंसी में अनेक युवा पत्रकारों ने तनाव को झेल न पाने के कारण पत्रकारिता ही छोड़ दी। यदि यह ट्रेंड जारी रहा तो मीडिया की तरफ प्रतिभा आकर्षित नहीं होगी। वैसे भी 'कैरियर कास्ट' वेबसाइट ने पत्रकारिता की नौकरी को 'वर्स्ट जॉब लिस्ट' में रखा है, जिसमें वृद्धि दर तेजी से घट रही है। 2015 में वेबसाइट ने दावा किया था कि आने वाले सात वर्षों में रिपोर्टर की नौकरी में 13 प्रतिशत की गिरावट होगी। भारतीय मीडिया में यह स्थिति बनती नजर आ रही है। इसलिए अविलम्ब मीडिया संस्थानों, सरकारों, पत्रकार संगठनों आदि सभी को ठोस कदम उठाने होंगे। पत्रकारों को तनाव से जूझने के गुर सीखने होंगे। आत्महत्या किसी समस्या का समाधान नहीं है। समस्या से पार पाने के तरीके खोजने होंगे।

ब्रेकिंग न्यूज या ब्रेकिंग फैक्ट

भारतीय मीडिया का चीनी संस्करण अब ईरान के नाम पर झूठ फैलाकर भारत विरोधी गतिविधियों में उत्प्रेरक के रूप में काम कर रहा है।

चित्र: गूगल इमेज से साभार

जयेश मटियाल

14 जुलाई को 'द हिन्दू' ने अपनी वेबसाइट पर एक खबर ब्रेक की। जिसके बाद यकायक भारत सरकार और विदेश नीति पर सवालों की बौछार शुरू हो गई। सोशल मीडिया की बदौलत हर कोई विदेशी मामलों का जानकार बना फिरने लगे। कुछ मीडिया घरानों ने तो इस खबर पर विदेशी मामलों के जानकारों की टिप्पणियां दर्ज करवानी शुरू कर दी। मगर अगले ही दिन यह सब धरा का धरा रह गया, जब दूसरा पक्ष सामने आया।

दरअसल, द हिन्दू ने खबर प्रसारित की, कि

ईरान ने भारत को चाबहार रेल प्रोजेक्ट से हटा दिया है। द हिन्दू के मुताबिक भारत की तरफ से वित्तीय देरी के चलते चाबहार बंदरगाह से जाहेदान तक का यह रेल प्रोजेक्ट, ईरान स्वयं से पूरा करेगा। 15 जुलाई को ईरान की तरफ से इस खबर पर प्रतिक्रिया आई। ईरान द्वारा इस खबर का खंडन करते ही, तथाकथित विदेशी मामलों के जानकार, जो पहले इस खबर की तर्ज पर भारत सरकार की विदेशी नीति को कोसने व सवाल दागने में लगे थे, सभी अपनी बगल झांकने में लग गए।

ईरान के बंदरगाह और समुद्री संगठन के डिप्टी फरहाद मोंतासिर ने कहा कि यह दावा पूरी तरह गलत है। उन्होंने बताया कि चाबहार में निवेश के लिए ईरान में भारत के साथ सिर्फ दो समझौतों पर हस्ताक्षर हुआ था। पहला पोर्ट की मशीनरी और उपकरणों के लिए और दूसरा भारत द्वारा 150 मिलियन डॉलर के निवेश को लेकर। मोंतासिर ने सफाई दी चाबहार में ईरान द्वारा भारत के सहयोग पर किसी भी तरह का प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। अल–जजीरा द्वारा ईरान का पक्ष सामने रखने के बाद भारत में रहने वाले भारत विरोधियों की उम्मीदों को झटका लगा है।

द हिन्दू ने इस खबर के साथ चीन द्वारा ईरान में किये जाने वाले निवेश को भी जोड़ा है। द हिन्दू के अनुसार इस रेलवे प्रोजेक्ट की शुरूआत उस समय हुई है, जब चीन ने ईरान के साथ, आने वाले 25 सालों तक 400 बिलियन डॉलर की रणनीतिक साझेदारी को अंतिम रूप दिया है। द हिन्दू के मुताबिक इससे ईरान में भारत की योजनाएं धूमिल पड़ सकती हैं। जबकि ईरान सरकार का कहना है कि चाबहार पोर्ट में निवेश के अलावा, भारत तुर्कमेनिस्तान की सीमा पर चाबहार से जाहेदान तक और जाहेदान से सराक की सीमा तक इस स्ट्रेटजिक ट्रांसिट रूट के निर्माण और वित्तपोषण में और अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

भारत–चीन सीमा विवाद के दौरान अप्रत्यक्ष रूप से चीन का हित साधने में लगा भारतीय मीडिया का चीनी संस्करण अब ईरान के नाम पर झूठ फैलाकर भारत विरोधी गतिविधियों में उत्प्रेरक के रूप में काम कर रहा है। बलूचिस्तान से लगे ईरान के तटीय हिस्से में स्थित चाबहार बंदरगाह अपनी रणनीतिक स्थिति और अफगानिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उज्बेकिस्तान, ताजिकिस्तान, किर्गिस्तान, और कजाखस्तान जैसे मध्य एशियाई देशों के निकटतम होने के कारण भारत के उपयोग के लिए बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह समझने के बजाय, भारतीय मीडिया का एक धड़ा अलग–अलग मोर्चों पर भारत के खिलाफ एक प्रोपेगेंडा सीरीज चलाने में लगा हुआ है।

'मेड इन चाइना' मीडिया जो चाबहार बंदरगाह के माध्यम से ईरान–भारत–अफगानिस्तान त्रिपक्षीय सहयोग विकास परियोजना की विफलता का दावा करने में लगा है, उसे यह जानना जरूरी है कि 17 जुलाई को अफगानिस्तान से तीसरा ट्रांसिट कार्गो शिप चाबहार बंदरगाह के माध्यम से भारत के लिए रवाना हुआ। लगभग बीस दिन पहले चाबहार बंदरगाह के माध्यम से सूखे फलों का अफगानिस्तान का पहला और दूसरा ट्रांसिट कार्गो भारत ने आयात किया था।

इसी बीच, चाबहार बंदरगाह के माध्यम से ही भारतीय गेहूं को अफगानिस्तान ले जाया जा रहा है, अब तक पांच जहाजों को चाबहार बंदरगाह से अफगानिस्तान के लिए स्थानांतरित कर दिया गया है। यब सब इस बात की ओर संकेत करता है कि यह ईरान–भारत–अफगानिस्तान त्रिपक्षीय सहयोग विकास परियोजना अपने उद्देश्य के लिए प्रतिबद्ध है।

इलस्ट्रेशन : राजीव पांडेय

चित्र : गूगल इमेज से साभार

वेब सीरीज

अश्लीलता और फूहड़पन परोसने की आजादी

कुछ निर्माता चाहते हैं कि उनकी फिल्में ए से यूए या यूए से यू की कैटेगरी में आ जाएं। फिर बोर्ड के सदस्य उन्हें सुझाव देते हैं कि फलां-फलां सीन और संवाद कम कर दीजिए या काट दीजिए, लेकिन वेब सीरीज की बाढ़ का रोकने और उसमें परोसी जा रही अश्लीलता को कम करने के लिए कोई ठोस कदम अगर केंद्र सरकार नहीं उठाएगी, तो आने वाले समय में स्थिति खतरनाक हो सकती है। वहीं, आपराधिक घटनाओं पर आधारित वेब सीरीज भी समाज को दूषित करने में अहम भूमिका निभा रही है।

हरीश चंद्र ठाकुर

सिनेमा अब बड़े पर्दे से एकाएक छोटे प्लेटफॉर्म पर आ रहा है, जिसे वेब सीरीज का नाम दिया गया है। इन वेब सीरीज को बनाने में बजट भी कम लगता है और वेब सीरीज निर्माता जो परोसना चाहता है, उस पर भी ज्यादा रोक–टोक देखने को नहीं मिल रही है।

जिस तरह एक साल में एकाएक वेब सीरीज की बाढ़ आई है, उसमें अश्लीलता और फूहड़पन भी बड़े स्तर पर दर्शकों को परोसा जा रहा है और जिस पर केंद्र सरकार और सेंसर बोर्ड का कोई कानूनी नियंत्रण नहीं है। मनोरंजन के नाम पर भारत के ग्रामीण परिप्रेक्ष्य को भी वेब सीरीज के माध्यम से बदनाम किया जा

रहा है। कई वेब सीरीज में देश के गांव–देहात के बारे में काल्पनिक कहानियां परोसी जा रही है। इसके अलावा वेब सीरीज के प्लेटफॉर्म के तौर पर एप्स की भरमार आई है, जिस पर ये अश्लील वेब सीरीज बड़ी आसानी से उपलब्ध हो रही हैं।

कोरोना काल के लॉकडाउन में मनोरंजन के प्लेटफॉर्म के तौर पर ओटीटी का चलन बढ़ा है। पिछले कुछ साल से भारत में सक्रिय विदेशी ओटीटी प्लेटफॉर्म ऑरिजिनल सीरीज लाकर भारतीय हिंदी दर्शकों के बीच पैठ बनाने की कोशिश में जुटा है। वहीं, नेटफ्लिक्स, अलट बालाजी, उल्लू, मैक्स प्लेयर, एमेजोन प्राइम एप्स पर कई वेब सीरीज रिलीज हुई हैं। जिसमें कुछ एक वेब सीरीज को छोड़कर अधिकतर में अश्लीलता ही परोसी गई है।

इन पर केंद्र सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय का कोई नियंत्रण नहीं है, न ही सेंसर बोर्ड कोई कार्रवाई करने की दिशा में पहल कर रहा है। सिर्फ अलट बालाजी पर सेना के अधिकारी से संबंधित एक वेब सीरीज में अश्लीलता परोसने का मामला मीडिया और सोशल मीडिया पर उछला था, जिसके बाद एकता कपूर ने माफी मांगी। इसके अलावा किसी वेब सीरीज पर अभी तक कोई ठोस कार्रवाई अमल में नहीं लाई गई है। न ही अश्लीलता से भरी वेब सीरीज बनाने वालों पर रोक लगाने की दिशा में कोई पहल हुई। वर्तमान युवा वर्ग से लेकर हर कोई वेब सीरीज में दिखाई जाने वाले गाली–गलौज और अश्लीलता की गिरफ्त में आ चुके हैं।

कई बुद्धिजीवी अब वेब सीरीज पर अंकुश लगाने की जरूर मांग उठा रहे हैं। सभी जानते हैं कि फिल्मों के लिए सीबीएफसी (सेंट्रल बोर्ड ऑफ फिल्म सर्टिफिकेशन)है जिसे प्रचलित धारणा में सेंसर बोर्ड माना जाता है। वास्तव में सीबीएफसी का काम फिल्मों को सेंसर करना नहीं है।

वह एक ऐसी संस्था है, जो फिल्में देखकर सर्टिफिकेशन देती है कि कौन–सी फिल्म किस कैटेगरी (ए,यूए या यू)की है। कुछ निर्माता चाहते हैं कि उनकी फिल्में ए से यूए या यूए से यू की कैटेगरी में आ जाएं। फिर बोर्ड के सदस्य उन्हें सुझाव देते हैं कि फलां–फलां सीन और संवाद कम कर दीजिए या काट दीजिए, लेकिन वेब सीरीज की बाढ़ का रोकने और उसमें परोसी जा रही अश्लीलता को कम करने के लिए कोई ठोस कदम अगर केंद्र सरकार नहीं उठाएगी, तो आने वाले समय में स्थिति खतरनाक हो सकती है। वहीं, आपराधिक घटनाओं पर आधारित वेब सीरीज भी समाज को दूषित करने में अहम भूमिका निभा रही है।

वेब सीरीज को लॉच करने के लिए कई एप्स प्ले स्टोर में उपलब्ध हैं, जिसे आसानी से डाउनलोड किया जा सकता है। इन एप्स पर नियंत्रण करने में केंद्र सरकार के किसी तंत्र की कोई भूमिका अभी तक नजर नहीं आ रही है। वेब सीरीज के प्लेटफॉर्म में कोई भी आसानी से सब्सक्राइब कर सकता है।

पेड वेब सीरीज को देखने के लिए युवा धड़ल्ले से सब्सक्राइब कर एप्स पर इन फिल्मों को देख रहे हैं।

चित्र : गूगल इमेज से साभार

भारतीय कला में स्वातंत्र्य चेतना

त्रिवेणी प्रसाद तिवारी

कलाएँ व्यक्ति में स्वातंत्र्य चेतना का विकास करती हैं। चेतना के बिंब अलग–अलग माध्यमों में अभिव्यक्त होते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जब तिलक, गोखले, सावरकर, गांधी और अनेक क्रांतिकारी अपनी आहुतियाँ दे रहे थे उस समय कला साधना करने वाले कलाकार भी पीछे नहीं रहे। तत्कालीन विभिन्न कलाकारों ने भारतीय विषयों एवं परिवेश को अपनी रचनाओं में उतारा। कई पौराणिक विषयों को चित्रित करने वाले प्रथम कलाकार राजा रवि वर्मा ने पाश्चात्य तकनीक में स्व की अनुभूति करायी।

तैल रंग तकनीक में देवी–देवताओं के चित्रों ने भाषाओं की दीवारों को लाँघते हुए सम्पूर्ण भारत के जनमानस को आस्थावान बनाया। उस समय अधिक से अधिक चित्रों को छापने और लोगों तक पहुचाने हेतु जर्मनी से लिथोग्राफ मशीन मंगवायी गयी। ये चित्र पाश्चात्य मास्टर्स कलाकारों की तुलना में भले ही कमतर ठहरते हों लेकिन देवी–देवताओं के चित्रों ने भारत के शहरों से लेकर गाँव–देहात तक लोगों के अन्दर कहीं न कहीं

स्वातंत्र्य

चित्र : गूगल इमेज से साभार

भारतीय अस्मिता को लेकर विमर्श का आन्तरिक वातावरण निर्मित किया। हाँ इन चित्रों के उत्पादन में पैसे बनाने का भाव भी जरुर रहा होगा परन्तु केवल अर्थलाभ ही रहा, ऐसा नहीं था।

इन चित्रों ने आम जन के दैव योग विश्वास को मजबूत किया। यही विश्वास आगे चलकर लोकगीतों में गाँधी, जवाहर या क्रांतिकारियों को देवता रुप में उद्धारक बन देश में अवतार के उदाहरण रुप में मिलता है। भारतीय प्राणधारा उसकी आस्था है। वह आस्था भारत माता के रूप में, ईशावास्यमिदम् सर्वम या श्आत्मवत सर्वभूतेषू के रूप में सर्वदा मानस में प्रवाहित होती रही जिसने अहिंसक आन्दोलन की पीठिका निर्मित की। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के विफल हो जाने के बाद अंग्रेजों ने सुनियोजित ढंग से, अधिकाधिक प्रहार भारतीय संस्कृति, उसके आस्था के केन्द्र देवरुपों पर की। आम जनहृदय को रुप उपासना के साथ शक्ति संकलन का कोई आधार चाहिए था जो प्रथमतः राजा रवि वर्मा के चित्रों में प्रतीत हुआ।

दूसरा सबसे बड़ा प्रभाव पैदा किया बंगाल में टैगोर परिवार ने। रवीन्द्रनाथ टैगोर के गीत जहाँ आध्यात्मिकता को पुनः स्वर दे रहे थे वहीं अवनीन्द्रनाथ टैगोर भारतीय स्वाभिमान को कला में खोज रहे थे। उन्होंने वागेश्वरी शिल्प प्रबंधावली में भारतीय षडंग की पुनः सरल व्याख्या की। वाश तकनीक में कोमल भावप्रवणता और स्वदेशी मूल्यों की अभिव्यक्ति को कागज पर उतारा। वे अजंता की चित्रशैली से गहरे प्रभावित थे फिर भी उन्होंने उसकी सीधी नकल नहीं की बल्कि चित्रों में भाव और सरसता को उतारने के लिए वाश तकनीक(जल द्वारा)को उपयुक्त माना। यह भावसौम्यता रवि वर्मा के यहाँ नहीं थी। पहली बार भारतमाता की कल्पना को अवनीन्द्रनाथ ने चित्र में उतारा। गेरुआ वस्त्र, चार हाथ जिसके हाथों में क्रमशः माला, धान की बाली, पुस्तक और वस्त्र लिये हुये पैरों के नीचे श्वेत कमल है। चेहरे

चित्र : गूगल इमेज से साभार

भारतीय यथार्थ को दर्शाते हैं।

उन्होने भारतीय भावबोध जगाने वाले विषयों को चित्रित किया। आगे चलकर उनके शिष्यों नन्दलाल बोस, क्षितिन्द्रनाथ मजूमदार, असित कुमार हाल्दार, मुकुल डे, शारदा उकील और उसके मनीषी डे ने स्वदेशी भाव, राष्ट्रीयता के स्वर को अपनी कला में स्थान दिया। इसे बंगाल स्कूल के नाम से जाना गया।

जब गाँधीजी की स्वदेशी से प्रेरणा लेकर लोग स्वतंत्रता आंदोलन में नये भारत की कल्पना कर रहे थे उस समय बंगाल स्कूल के कलाकार भारतीय छवियों को ग्रामीण भारत और उसकी आस्था–आध्यात्मिकता को अपने रंगों–रेखाओं में समाहित कर तत्कालीन अंग्रेज विद्वानों और पाश्चत्य कला जगत के समानांतर भारतीय कला मेधा का स्वरुप रच रहे थे। नन्दलाल बोस द्वारा दांडी मार्च(1930ई.) विषय पर लिनो कट

नन्दलाल बोस द्वारा दांडी मार्च(१९३०ई.) विषय पर लिनो कट माध्यम से श्वेत-श्याम रंग में बनाया चित्र बहुत प्रसिद्ध हुआ। यह चित्र गाँधी जी की संकल्पशक्ति और आगे चलती कृषकाय की महान यात्रा को दर्शाती है।

चित्र : गूगल इमेज से साभार

माध्यम से श्वेत–श्याम रंग में बनाया चित्र बहुत प्रसिद्ध हुआ। यह चित्र गाँधी जी की संकल्पशक्ति और आगे चलती कृषकाय की महान यात्रा को दर्शाती है। 1938 ई.में हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में नन्दलाल बोस एवं उनके शिष्यों द्वारा चित्रित पंडाल आज भी कलाकार की स्वातंत्र्य चेतना का परिचायक है। नन्दलाल के चित्रों में अजंता की लयात्मकता और अद्भुत् रेखांकन मिलता है। उनके शिष्यों की भी सुदीर्घ परम्परा रही जिन्होंने भारतीयता के स्वर को नव्यता प्रदान की।

देशकाल और समकालीन परिस्थितियाँ रचनाकारों पर अपना प्रभाव डालती हैं। तत्कालीन व्यथाओं को गढ़ने हेतु उसी समय में ही रुप–प्रतिरुप गढ़ने पड़ते हैं। यह कलाकार का अपना विवेक–धर्म है कि वह अपने मुहावरे का रुप साम्य किस तरह खोजता है। यदि उसकी जड़ें–अनुभव समाज की गहराई तक हैं तो यथार्थ का विरल रुप देखने को मिलता है परन्तु यदि केवल यथार्थ ही एकमात्र आन्दोलन बन जाय और आँखों से दिखने वाली घटनाएँ या दृश्य मात्र ही सत्य बन जायें तो कलाकार एकांगी होता जाता है।

देश के स्वतंत्र होने के बाद कला क्षेत्र में बंगाल स्कूल के पुराना होने और कुछ नये यथार्थ रचने की खोज में मुम्बई में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप की स्थापना होती है जिसमें एफ. एन. सूजा, एम. एफ. हुसैन, आरा, अकबर पदमसी, सैय्यद हैदर रजा, बाकरे, गाडे प्रमुख थे। इन कलाकारों ने पाश्चात्य कला आंदोलनों की तरह भारत में राष्ट्रीयता के स्वर को हटाकर वैयक्तिक अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी। हुसैन और सूजा अपनी कलाकृतियों के चलते विवाद में रहे। फ्रांसिस न्यूटन सूजा ने नग्न कामुक आलिंगन, संभोग को वीभत्सता और अमानवीयता तथा आपराधिक भाव में चित्रित किया। घोड़े की तीव्रता चित्रित करने वाले हुसैन ने ज्ञानदेवी सरस्वती की नग्न आकृति बनायी। यहीं से विवादित होकर प्रसिद्ध होने का नया फार्मूला कला जगत में निकल कर आया। जिसे आगे कई कलाकारों ने अपनाया।

चिन्तन और विमर्श की बात यह है कि ऐसा बनाया क्यों गया? पूर्व में जब राजा रवि वर्मा सरस्वती की कल्पना को चित्रित करते हैं तो वो जनमानस में पूज्य बन जाती है, जब अवनीन्द्र नाथ भारतमाता बनाते हैं तो करोड़ों भारतवासियों के लिए श्रद्धा बन जाती हैं । उसके बाद वीणावादिनी रेखारुप में नग्न बनायी जाती हैं। कुछ नया यथार्थ स्थापित किया जाता है। इस देश का जनमानस अपनी आस्था प्रतीकों के रूप में सुरक्षित रखता है। ये प्रतीक किसी भी स्वरुप के साथ रख देने पर आदर्श का मूर्तिमान रुप पुनः उपस्थित हो जाता है जैसे रामलीला में राम की भूमिका निभाने वाला व्यक्ति साल दर साल बदल जाता है लेकिन धनुष, तूणीर और गेरुआ धारण करके अन्य व्यक्ति राम को उपस्थित कर देता है। भारतीय जनमानस उस रुप को पाकर आनंदित हो जाता है। ये कौन सा सत्यान्वेषी यथार्थ है जो प्रतीकों के मर्म को साधने की बजाय केवल वैयक्तिक रुप से मात्र किसी क्षण की आवेशीय कल्पना को त्वरित बना देने को कलाकार की स्वातंत्र्य अभिव्यक्ति मानता है।

हुसैन ने उस आस्था को केवल महिला और वीणा के रुप में संकुचित दृष्टि से देखा । खजुराहो की कामरत मूर्तियाँ जो अलग ही भाव रचती हैं वहीं सूजा के कामरत मिथुन चित्र आपराधिक–वीभत्स वृत्तिपूर्ण मात्र निजी कड़वाहट ही बताते हैं। तथाकथित प्रगतिशीलता की रफ्तार में भारतीय कलाधारा अपनी स्वातंर्त्य चेतना में अंतर्निहित संगच्छध्वं संवदध्वं के भाव से नीचे उतरकर कुंठित और व्यक्तिनिष्ठ हो जाती है। आज भी भौतिक चकाचौंध और करोड़ रुपये में बिकने की लालसा ने कला की स्वतंत्रता के विमर्श को दिशाहीन कर दिया है। समष्टि की अभिव्यक्ति गायब है। राष्ट्रीयता का विषय कलाकारों के श्कन्टम्पररीश (तथाकथित समकालीनता) होने पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। राष्ट्रीयभाव का स्वाभाविक अंकन करने की बजाय कुछ कलाकार केवल ऐतिहासिक धरोहरों को चित्रित करके ही राष्ट्रीय कलाकार का दर्जा पा लेना चाहते हैं। धरोहरों को आत्मसात करके वर्तमान के साथ चिन्तन के फलस्वरुप नवीन प्रयोग किये जायें जैसे अवनीन्द्रनाथ जैसे अनेक शिल्पियों ने किया, तो भारतीय कला जगत में स्वदेशी कला के नये युग का सूत्रपात होगा।

चीन के प्रति भारतीय मीडिया के हमदर्द रवैये की वजह

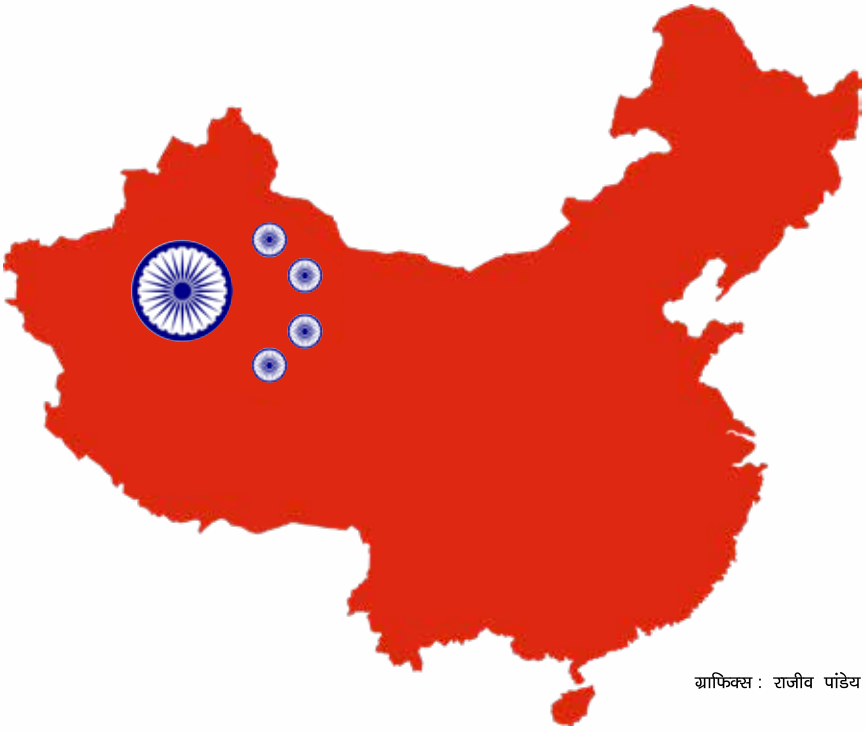

ग्राफिक्स : राजीव पांडेय

जब भारत में चीनी सामानों के बहिष्कार की मांग शुरू हुई या उसकी कंपनियों पर पाबंदी लगाने की मांग तेज हुई तो अखबारों के जिम्मेदार पदों पर बैठे लोगों ने अपने अखबारों के साथ ही सोशल मीडिया पर अपने विश्लेषणों के माध्यम से एक तरह से यह जताना शुरू कर दिया कि देश ने अगर ऐसा कदम उठाया तो उलटे उसका ही नुकसान होगा।

उमेश चतुर्वेदी

जून की तपती दोपहरियों के बीच हर सुबह ताजगी और राहत का संदेश लेकर आती है। लेकिन 16 जून 2020 की सुबह वैसी नहीं थी। देसी मीडिया की सुर्खियां गलवन घाटी में देश के बीस रणबांकुरों के वीरगति प्राप्त होने की उत्तेजित करने वाली घटना से भरी थीं। चूंकि यह राष्ट्र पर हमला था, लिहाजा उम्मीद की जा रही थी कि समाचार माध्यम इस घटना को लेकर हमलावर होंगे और साम्राज्यवादी चीन की लानत–मलामत होगी,राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत शहीदाना मुद्रा वाले विश्लेषण होंगे। समाचार पत्रों के वैचारिक पृष्ठों पर राष्ट्र को प्रेरित करने वाले विश्लेषण होंगे।

लेकिन कुछ एक अखबारों को छोड़ दें तो ज्यादातर जगहों पर इस घटना को लेकर जो वैचारिक खुराक भारतीय पाठकों को दी जानी चाहिए थी, वैसी नहीं दी गई। उलटे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और उनकी सरकार को ही इस बात के लिए जिम्मेदार ठहराया जाने लगा कि उन्होंने ही चीन को इतना मौका दिया कि वह हमारी सीमाओं के अंदर घुस कर हमारे जवानों को मारने की हिमाकत कर सका है।

कुछ अखबारों ने महाबलीपुरम और अहमदाबाद में चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग को घुमाने या झूला झुलाने को लेकर प्रधानमंत्री को उलाहना भी दिया। कुछ–एक अखबारों के संपादकीय पृष्ठों पर ऐसे लेख छापे गए, मानो चीन को हमारी मौजूदा सरकार ने ही उकसाया है? अन्यथा महान चीन हम पर तमाम तरह की कृपा बरसाने की तैयारी में था। जब भारत में चीनी सामानों के बहिष्कार की मांग शुरू हुई या उसकी कंपनियों पर पाबंदी लगाने की मांग तेज हुई तो अखबारों के जिम्मेदार पदों पर बैठे लोगों ने अपने अखबारों के साथ ही सोशल मीडिया पर अपने विश्लेषणों के माध्यम से एक तरह से यह जताना शुरू कर

दिया कि देश ने अगर ऐसा कदम उठाया तो उलटे उसका ही नुकसान होगा। इसी तरह जब चीन के 59 मोबाइल एप्प को देश में प्रतिबंधित किया गया तो उसकी भी आलोचना की गई। दिलचस्प यह है कि ऐसा करने वाले अखबारी संस्थानों के जिम्मेदार पदों पर तैनात वही लोग हैं, जो यह कहते नहीं थकते कि देश में अघोषित तौर पर आपातकाल लगा है और उनकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में है। चीन के मसले पर उनके भारत विरोधी रूख ने ही साबित किया कि देश में लगे अघोषित आपातकाल की हकीकत क्या है? उन लोगों के पास इस बात का जवाब नहीं है कि आखिर आपातकाल लगा है तो फिर वे भारत सरकार ही नहीं,भारत विरोधी रूख अपने अखबारों और सोशल मीडिया एकाउंट पर कैसे अपनाए रखे हुए हैं और राज सत्ता उनका बाल बांका भी नहीं कर पा रही है।

उदारीकरण के साथ चीन ने अपनी अर्थव्यवस्था को ही नहीं खोला, बल्कि उसने वैचारिक मोर्चे पर अपने पक्ष में माहौल बनाने के लिए अपना खजाना खोल दिया। दुनियाभर के थिंक टैंक को अपने पक्ष में करने के साथ ही उसने अपने प्रतिद्वंद्वी देशों मसलन अमेरिका और भारत तक में निवेश किया। भारत में उसकी निगाह उन पत्रकारों पर रहती है, जो संपादकीय पेजों के प्रभारी होते हैं या फिर राष्ट्रीय राजनीतिक–आर्थिक ब्यूरो में प्रभावी भूमिका में रहते हैं। वह हर साल इनमें से पंद्रह से लेकर 25 लोगों तक को चुनता है और फिर उन्हें चीन की पंद्रह दिनों से लेकर एक महीने तक की मुफ्त यात्रा कराता है। इस यात्रा के दौरान वह भारतीय पत्रकारों को जबरिया कब्जाए तिब्बत ले जाना और वहां आर्थिक–सामाजिक बदलाव लाने की अपनी कोशिशों को दिखाना नहीं भूलता। वह अपनी चमकती अर्थव्यवस्था के प्रतिनिधि शहरों शंघाई, बीजिंग, ग्वांझू आदि की इन पत्रकारों को सैर कराता है। इस सैर के साथ ही उन्हें भारत लौटने पर छोटे–मोटे गिफ्ट भी देता है। चीन यात्रा के दौरान सभी पत्रकारों को पांच सितारा मेहमाननवाजी दी जाती है।

जाहिर है कि ऐसे लोग जब भारत लौटेंगे तो उन पर चीन की मेहमाननवाजी का असर रहेगा ही, चाहे वे कितना ही भारत भक्त क्यों न हों। इसके बाद वे अपनी रिपोर्टों या लेखों में चीन विरोधी तथ्यों को या तो किनारे करेंगे या फिर उन्हें स्वीकार ही नहीं करेंगे। फिलहाल दो साल से चीन की यह योजना बंद है। अन्यथा पिछले कई सालों में चीन भारत के प्रमुख मीडिया संस्थानों के सैकड़ों पत्रकारों को अपने यहां की सैर करा चुका है और उन्हें अपना बना चुका है। चीन ने इन पत्रकारों के चयन में सावधानी बरती और उन्हें ही अपने यहां की उसने यात्रा कराई, जो अपने संस्थानों में प्रभावी भूमिकाओं में थे, जो चीन विरोधी तथ्यों और लेखों को परे रखने में कारगर हो सकते थे। कहना न होगा कि यही वजह है कि चीन के हमले के बावजूद भारतीय अखबारों में जितनी चीन विरोधी सामग्री, विश्लेषण और आलेख दिखने चाहिए थे, नहीं दिखे।

यह सच है कि भारतीय मीडियाकर्मियों के बड़े वर्ग की नौकरी और प्रोमोशन आदि की गारंटी वामपंथी विचारधारा का समर्थक होना है, लिहाजा वाम विचारधारा के लोग भारतीय मीडिया में भरे पड़े हैं। इनमें भी माओ समर्थक ज्यादा हैं। जाहिर है कि उनकी विचार सरणी का उत्स केंद्र ही माओ हैं, लिहाजा वे चीन को पवित्र गाय मानते हैं। जाहिर है कि ऐसे में वे चीन के कुकृत्यों को अपने पाठकों के बीच कैसे सामने ला सकते हैं?

चीन में इन दिनों सत्ता संघर्ष भी चल रहा है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सर्वोच्च प्रतिनिधि सभा से शी जिनपिंग को आजीवन राष्ट्रपति बने रहने की मंजूरी हासिल करने के बाद चीनी कम्युनिस्ट पार्टी में नंबर दो ली केछियांग का खेमा नाराज है। वे शी जिनपिंग की नीतियों का विरोध भी कर रहा है। इसे लेकर शी जिनपिंग का खेमा ली केछियांग पर हमलावर भी है। लेकिन इस सत्ता संघर्ष को भी भारतीय मीडिया में कहीं जगह मिलती नहीं दिख रही है। अब तो कुछ लोगों को शक है कि चीन की तरफ से भारतीय थिंक टैंक या मीडिया के कुछ वर्गों को परोक्ष रूप से आर्थिक सहायता भी पहुंचती है। जिसका असर यह है कि भारतीय मीडिया में चीन की साम्राज्यवादी सोच की भारतीय राष्ट्रीय नजरिए से जितनी चीरफाड़ होनी चाहिए थी,नहीं हो रही है।

चित्र गूगल इमेज से साभार

आईसीटीसी क्षेत्र में आत्मनिर्भरता और सुरक्षा का प्रश्न

जब भारत में चीनी सामानों के बहिष्कार की मांग शुरू हुई या उसकी कंपनियों पर पाबंदी लगाने की मांग तेज हुई तो अखबारों के जिम्मेदार पदों पर बैठे लोगों ने अपने अखबारों के साथ ही सोशल मीडिया पर अपने विश्लेषणों के माध्यम से एक तरह से यह जताना शुरू कर दिया कि देश ने अगर ऐसा कदम उठाया तो उलटे उसका ही नुकसान होगा।

इलस्ट्रेशन : राजीव पांडेय

रविन्द्र सिंह भड़वाल

आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन का कभी कोई विकल्प नहीं हो सकता। सूचना और तकनीकी के क्षेत्र में तो दूसरों पर निर्भर रहने का जोखिम बिलकुल भी नहीं लिया जा सकता। सूचना, संचार एवं तकनीकी क्षेत्र सीधे–सीधे डाटा से जुड़ा हुआ है। इस क्षेत्र में भी भारत अगर

दूसरे देशों, खासकर चीन पर निर्भर रहेगा, तो आर्थिक एवं भू–राजनीतिक चुनौतियों के साथ–साथ राष्ट्रीय सुरक्षा हमेशा दांव पर लगी रहेगी। लिहाजा, सूचना एवं तकनीकी क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं हो सकता।

मोदी सरकार ने अपने पहले ही कार्यकाल में डिजिटल इंडिया, मेक इन इंडिया और स्टार्ट अप इंडिया जैसी महत्वाकांक्षी योजनाओं को लागू करके भारत को आत्मनिर्भर बनाने के अपने इरादे जाहिर कर दिए थे। कोरोना काल में आर्थिक मंदी के बाद से भारत को आत्मनिर्भर बनाने की जरूरत भी नये सिरे से महसूस की जाने लगी है। इस दिशा में अहम मोड़ तब आया, जब 15 जून को सीमा पर चीन के साथ झड़प में भारत के 20 जवान शहीद हो गए थे। उस समय चीन–विरोध में जो माहौल पैदा हुआ, उसमें भारत की जनता और सरकार के स्तर पर चीनी सामान के खिलाफ एक मजबूत जनमत बनना शुरू हो गया। भारत सरकार ने चीन को स्पष्ट संदेश भेजते हुए 59 चीनी मोबाइल ऐप्स को अपने यहां प्रतिबंधित कर दिया। इसके दूसरे चरण में भारत सरकार ने चीन पर एक और डिजिटल स्ट्राइक करते हुए 47 एप्स पर प्रतिबंध लगा दिया है। चीन के खिलाफ भारत सरकार का यह कदम अप्रत्याशित एवं साहसिक है। हालांकि यह तो शुरुआत भर है। अभी आगे एक लंबी लड़ाई सामने है।

भारतीय बाजार में आईसीटीसी क्षेत्र में अथाह संभावनाएं मौजूद हैं। इस साल जनवरी महीने में भारत के स्मार्टफोन बाजार ने अमेरिकी बाजार को पहली बार पीछे छोड़ दिया और वह चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा स्मार्टफोन बाजार बन गया। भारत में फिलहाल 50 करोड़ 40 लाख इंटरनेट उपयोगकर्ता हैं, जो कि विश्व में चीन के बाद दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या है। एक अनुमान के अनुसार 2021 तक भारत की तकरीबन 59

चित्र : गूगल इमेज से साभार

फीसदी आबादी इंटरनेट से जुड़ चुकी होगी। लेकिन वायरलेस हैंडसेट और दूरसंचार तकनीक को लेकर हम अभी भी काफी हद तक आयात, खासकर चीन पर निर्भर हैं। यह आर्थिक दृष्टि से बेहद खतरनाक स्थिति है। हम हर वर्ष अरबों रुपये चीन के खजाने में डाल रहे हैं और वह उसी धन का दुरुपयोग भारत और अपने दूसरे पड़ोसी देशों की मुश्किलों को बढ़ाने के लिए करता रहा है।

अगर भारतीय बाजार में चीनी मोबाइल हैंडसेट, कम्प्यूटर और दूसरे दूरसंचार यंत्र अपनी पैठ बनाने में कामयाब रहे हैं, तो इसके पीछे एक साथ कई कारण कार्य कर रहे होते हैं। सबसे पहले तकनीकी को अपनाने की बात आती है। इसे समझने के लिए आईसीटीसी क्षेत्र से संबंधित 4जी का ही एक उदाहरण लेते हैं। 4जी तकनीक आने पर चीनी मोबाइल हैंडसेट बनाने वाली कंपनियों ने बाजार की तमाम संभावनाओं को अपने पक्ष में लाने के लिए पूरी ताकत झोंक दी थी। वहीं उसकी भारतीय समकक्ष कंपनियों ने इस ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया। इसी का नतीजा है कि 4जी आधारित मोबाइल हैंडसैट बनाने के मामले में भारतीय बाजार का एक बड़ा हिस्सा आज भी चीन मोबाइल उत्पादक कंपनियों के कब्जे में है। सीमा पर तनाव पैदा होने से पहले तक भारतीय बाजार में तीन टॉप हैंडसैट ब्रैंड (शाओमी, ओप्पो और वीवो) चीन के थे। सीमा पर तनाव के दौरान इन कंपनियों को भारत में जरूर कुछ विरोध झेलना पड़ा, लेकिन अब पुनः पहले वाली स्थिति होने लगी है। नवीन तकनीकी को अपनाने के साथ–साथ ये कंपनियां अपने उत्पाद की ब्रांडिंग पर भी विशेष ध्यान देती रही हैं। ओप्पो और वीवो का कार्य देखने वाली बीबीके इलैक्ट्रॉनिक्स मार्केटिग के लिए 250 मिलियन अमेरिकी डॉलर के बजट को खर्च करने के लिए पूरी तरह से प्रतिबद्ध दिखी। इसी तरह बाकी चीनी कंपनियां अपने उत्पादों की ब्रांडिंग के लिए कोर कसर नहीं छोड़तीं। चीनी कंपनियों की भारतीय बाजार में सफलता की यह भी एक कुंजी रही है। इसके उलट भारतीय कंपनियां इस मोर्चे पर भी पिछड़ी हुई नजर आईं।

तकनीकी निर्भरता को लेकर अगली सबसे बड़ी चुनौती चीन के भारत के खिलाफ चलाए जा रहे प्रोपगेंडा को लेकर है। सूचनाओं के जरिए लड़े जा रहे इस युद्ध में चीन और इसकी आईसीटीसी क्षेत्र से जुड़ी कंपनियां भारत को दुनिया के सामने नकारात्मक रूप से पेश करके इसकी सॉफ्ट पावर को लगातार टारगेट कर रही हैं। इसे हाल के एक उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं।

कुछ समय पहले चीनी कंपनी अलीबाबा के यूसी ब्राउजर और यूसी न्यूज के खिलाफ इसी कंपनी में काम करने वाले पुष्पेंद्र परमार ने कंपनी के खिलाफ न्यायालय में केस किया है। उनका आरोप है कि यूसी न्यूज ने अपने पोर्टल पर भारत में उन खबरों को सेंसर करने की कोशिश की, जो चीन के खिलाफ थीं। जब उन्होंने कंपनी की इस साजिश के खिलाफ आवाज उठाई, तो उन्हें कंपनी से निकाल दिया गया। इसके अलावा इसी कंपनी पर आरोप है कि यह कंपनी भारत में राजनीतिक अस्थिरता पैदा करने के लिए फेक न्यूज को बढ़ावा देती रही है।

यह तो महज एक मामला है, चीनी कंपनियां सुनियोजित ढंग से लंबे समय से भारत के खिलाफ एजेण्डा आधारित सूचना प्रवाह को बढ़ावा देती रही हैं। दूसरा, जो भी चीनी कंपनियां भारतीय बाजारों में अपने मोबाइल हैंडसैट उतारती हैं, उसमें यूसी ब्राउजर, यूसी न्यूज और ओपेरा मिनी जैसे सॉफ्टवेयर और ऐप्स पहले से ही इंस्टॉल रहते हैं। इसके कारण जाने–अनजाने भारतीय उपभोक्ता इसका उपयोग करते हैं और इसके पीछे के चीनी प्रोपगेंडा का शिकार भी होते रहे हैं।

आईसीटीसी क्षेत्र में दूसरों पर निर्भरता का सबसे बड़ा संकट राष्ट्रीय और लोगों की निजी सुरक्षा में सेंध से जुड़ा है। यह क्षेत्र सीधे–सीधे डाटा और राष्ट्रीय एवं निजी गोपनीयता से जुड़ा होता है। सूचना एवं तकनीकी क्षेत्र से जुड़े लोग हमेशा एक बात पर विशेष तौर पर जोर देते हैं कि गोपनीयता ही सब कुछ होती है।

लेकिन जब हम विदेशी तकनीक को अपना रहे हैं और उस पर अपनी निजी एवं गोपनीय जानकारी साझा कर रहे हैं, तो हम एक तरह से सेवा मुहैया करवाने वाली कंपनियों एवं देशों को अपनी निजता और गोपनीयता में सेंधमारी का न्यौता ही दे रहे हैं।

इस तरह से चीनी कंपनियों का डाटा पर जो नियंत्रण होता है, उसके जरिए वे लगातार भारत और भारतीयों की गतिविधियों पर निगरानी रखता है। चीन की पीपल्स लिबरेशन आर्मी (पीएलए) पर बार–बार आरोप लगते रहे हैं कि वह आईसीटीसी कंपनियों के सहयोग से दूसरे देशों पर लगातार साइबर हमले करती रही है। 2013 में सीआईए के पूर्व प्रमुख मिशेल हैडन ने दावा किया कि 'चीन की दिग्गज दूरसंचार कंपनी हुआवे सुरक्षा को लेकर एक गंभीर खतरा है।'

वैश्वीकरण के बाद अब पूरी दुनिया में नि–वैश्वीकरण के प्रति रुझान बढ़ने लगा है। नि–वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न राष्ट्रों के बीच निर्भरता एवं एकीकरण में कमी आने लगी है। इसके तहत हर राष्ट्र सर्वप्रथम अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए प्रयासरत है।

कोविड–19 महामारी के बाद से यह अवधारणा और भी मजबूती के साथ जोर पकड़ने लगी है। भारत को भी अब आत्मनिर्भता के क्षेत्र में मजबूती से कदम आगे बढ़ाने चाहिए, क्योंकि आत्मनिर्भरता का दूसरा कोई और विकल्प नहीं हो सकता। इस हेतु आईसीटीसी क्षेत्र निश्चित तौर पर भारत की प्राथमिकताओं में शुमार होना चाहिए।

कार्टून : राजीव पांडेय